संस्थापक सम्पादक
योगयोगेश्वर अनन्तश्री
चन्द्रमोहनजी महाराज

सिद्धयोग

वर्ष- १०
अंक- १

श्री सिद्ध गुफा प्रकाशन संवाई आगरा

प्रकाशक

श्री सिद्धगुफा, सवाई

इस अंक में—

❀ मुक्ति योगिभिः पूर्णतः प्रकाशम् १

❀ यौगिक षट्कर्म (हमारा विशेष लेख) २

श्रीमदाचार्य अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

❀ अन्तर्मौन द्वारा योग-साधना ६

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम. ए.

❀ बिनु श्रम नारि परम गति लहई १३

श्रीमती सरिता भारद्वाज एम० ए०

❀ कुण्डलिनी शक्ति रहस्य २१

स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी

❀ भगवान कपिल का माता को योगोपदेश २४

श्री रामलाल ब्रह्मचारी

❀ समर्थ योगी श्री रामदास २७

श्री केशव जी उपाध्याय

❀ श्री गुरु कृपा का अद्भुत चमत्कार ३७

श्री ध्रुवेन्द्रसिंह सिसोदिया

❀ शिवलीन अवधूत योगी ३६

श्री कृपालानन्द जी

❀ संत महिमा और रामचरित मानस ४५

श्री रामकृष्ण त्रिपाठी

❀ एक दिन की बात ४६

श्री दर्शनानन्द

संयुक्त सम्पादक

'दिव्य'

सितम्बर १९८४

वार्षिक मूल्य २५ रुपया

ॐ

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः ॐ

परम पूज्य योगयोगेश्वर

श्री सद्गुरुदेव जी भगवान का

जन्म–दिवस समारोह

विजय दशमी ४ अक्टूबर ८४ दिन गुरुवार को

सवाई आश्रम (एत्मादपुर) के प्रांगण में मनाया जायगा।

हमें यह सूचित करते हुए अपार हर्ष हो रहा है कि परम पूज्य श्री गुरुदेव जी भगवान का जन्म दिवस-समारोह जो विभिन्न क्षेत्रों एवं नगरों में आयोजित हो रहा है, वह इस वर्ष बड़े ही उत्साह, उल्लास के साथ सवाई आश्रम पर आन्ध्र प्रदेश के ब्रह्मचारी श्रीराम रमन एवं श्री त्रिपुरानन्द नाथ की ओर से ४ अक्टूबर १९८४ को मनाया जायगा। उनके साथ के अन्य साथी भी इस पवित्र आयोजन में अपना सहयोग प्रदान करेंगे।

सभी गुरु भाई-बहन तथा योगप्रेमी सज्जन इस आयोजन में सम्मिलित होने के लिए सादर सप्रेम, सस्नेह आमंत्रित हैं। इस सूचना को ही आप हमारा निमंत्रण पत्र समझ कर विजय-दशमी ४ अक्टूबर १९८४ दिन गुरुवारको आयोजित इस समारोहमें सम्मिलित होकर आतिथेय भाइयों के उत्साह को बढ़ाते हुए गुरु-पूजन एवं गुरु-दर्शन का लाभ लेने की कृपा करें। अवश्य अवश्य पधारिए।

दर्शनाभिलाषी:—

संयोजक, जन्म-दिवस-समारोह समिति

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सर्वाई (एत्मादपुर) आगरा ।

वर्ष १७ अङ्क ६	[illegible] [illegible] मुक्ति [illegible] । [illegible] [illegible] भवतु [illegible] सिद्धये 'सिद्धयोगः' ॥	सितम्बर १९८४

मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम्

क्षान्तं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः,
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः ।
ध्यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणैर्न शम्भोः पदं,
तत्तत्कर्मकृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वञ्चितम् ॥

अर्थात्

हमने सहन किया पर क्षमा से नहीं, किन्तु असमर्थता से, गार्हस्थ्य सुख को त्यागा नहीं पर सन्तोष से नहीं अपितु दरिद्रता के कारण भी ; हमने शीत, वात और तपन के कष्ट को सहा पर तप के कष्ट भी न सहा, ध्यान तो किया पर धन का किया, प्राणायाम द्वारा शंकर भगवान के चरणों का नहीं किया इस तरह हमने वही कर्म किये जिन को मुनियों ने किया था, परन्तु उनका फल हमें मुनियों के जैसा नहीं मिला ।

क्योंकि हमारी सारी साधना स्वेच्छा से नहीं जिस समय जब आरम्भ हुई थी ।

हमारा विशेष लेख—

यौगिक षट्कर्म

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

यौगिक साधना में यौगिक षट कर्म अपना महत्व पूर्ण स्थान रखते हैं। हमारे ऋषि मुनियों ने लोक कल्याण की भावना रखते हुए घट-शुद्धि पर विशेष बल दिया है। घट शुद्धि का अर्थ होता है - शरीर शुद्धि। जिस शरीर अथवा देह में आत्मा निवास करता है, उसे 'घट' शब्द से भी बोधित किया गया है। आयुर्वेद शास्त्र का प्रामाणिक सूत्र है :—

शरीर माद्यं खलु धर्म साधनम्

अर्थात् धर्म साधना का एक मात्र आधार होता है यह मानव शरीर। यदि यह शरीर मलों से दूषित होकर रोगी और अस्वस्थ रहता है तो धर्म-निर्वाह की कोई भी साधना या क्रिया सफलतया कर पाना सम्भव ही नहीं हो पाता। इसीलिए शरीर अथवा घट की शुद्धि के लिए-उसे नीरोग और स्वस्थ रखने के लिए-यौगिक षट कर्म पद्धति को नियमित रूप से व्यवहार में लाना आवश्यक बतलाया गया है। इसके अमल में लाने से बुद्धि जो आत्मा का निकटतम सूक्ष्मतम प्रकृतिस्थ उपकरण है रजोगुण और तमोगुण से रहित होकर सतत् सतोगुण में रमण करने लगती है और पुरुष यानी आत्मा की ही शान्ति में दीप्त होकर उसे कैवल्य-लाभ करा देती है। भगवान पतञ्जलि देव ने योग-दर्शन के कैवल्य पाद में इसी तथ्य का समर्थन करते हुए कहा है :—

सत्त्व पुरुषयोः शुद्धि
साम्ये कैवल्यमिति।

अर्थात् प्रकृति (बुद्धि) एवं पुरुष की शुद्धि बराबर हो जाती है तो मनुष्य कैवल्य लाभ कर लेता है। साधक को तब किसी अन्य साधन को करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। यह शुद्धि ही उसकी ज्ञान दीप्ति का कारण बन जाती है।

हठयोग के आचार्यों ने भी अपने ग्रन्थों में घट-शोधनार्थ षट कर्मों का विस्तार से वर्णन किया है। उनकी मान्यता है कि कफवात आदि के दोषों से दूषित यह अस्थि चर्ममय देह जब तक दोष रहित अथवा शुद्ध नहीं हो जाता तब तक योग क्रियाओं का अनुष्ठान उचित प्रयोग नहीं हो सकता। प्रत्येक दशा में प्रतिफल देखने में आता है कि घट शुद्धि के बिना

मन माने ढंग से जो लोग योग साधनायें करने लगते हैं वे कई प्रकार के विकारों और दोषों से तो ग्रसित हो ही जाते हैं, साथ ही योग विद्या के अपयश के भी कारण बन जाते हैं। अतः यह आवश्यक है कि पहले घट शुद्धि कर के इस तन-शकट को अन्य भूमिकाओं में अग्रसर होना चाहिए। योगाङ्गों के अनुसरण का पूरा लाभ इसी विधि से उठाया जा सकता है।

घट शुद्धि के लिए यौगिक षट्कर्मों की विधि भी किसी अनुभवी और वेत्ता गुरु की शरण में ही जा कर सीखनी चाहिए। अनुभवहीन और ना जानकार से सुनी हुई बातों के आधार पर की गई क्रिया-विधि लाभ के स्थान पर गहरी हानि पहुँचाने का कारण बन सकती है।

घेरण्ड संहिता में महर्षि घेरण्ड जी ने यौगिक षट्कर्मों का वर्णन इस प्रकार किया है। वे लिखते हैं—

धौतिर्वस्तिस्तथा नेति
त्राटकं नौलिकं तथा ।
कपालभातिश्चैतानि
षट्कर्माणि प्रचक्षते ॥

अर्थात् धौति, वस्ति और नेति नौली त्राटक तथा कपाल भाति ये ही षट्कर्म कहे गये हैं।

इन्हें भली प्रकार सीखकर गोपनीय रखने का आदेश इस हेतु से दिया गया है कि यह उपयोगी विद्या कहीं अयोग्य और अनधिकृत व्यक्तियों के हाथ में न पड़ जाय।

१. धौति कर्म—

इस धौति कर्म के चार प्रकार बताये गये हैं :—

अन्तर्धौति, दन्त धौति, हृद धौति एवं मूल शोधन। इसके द्वारा योगिजन अपने शरीर को सबल और स्वस्थ बनाते हैं। यथा :—

अन्तर्धौतिर्दन्त धौतिः
हृद्धौतिर्मूल शोधनम् ।

इन चार भेदों के वर्णन से पूर्व धौति का स्वरूप क्या है—इसे समझ लेना आवश्यक है। हठयोग-प्रदीपिका में इसके प्रकार और रूप का वर्णन इस प्रकार किया गया है :—

चतुरंगुल विस्तारं
हस्तपंच दशायतम् ।
गुरूपदिष्ट मार्गेण
सिक्तं वस्त्रं शनैर्ग्रसेत् ।
पुनः प्रत्याहरेच्चैतद्
उदितं धौति कर्म तत् ।

अर्थात् चार अंगुल का जिसका विस्तार हो और पन्द्रह हाथ दस हाथ अथवा कम से कम पांच हाथ का लम्बा हो बारीक वस्त्र किंचित उष्ण जल से भिगोकर गुरुदेव के बताये हुए क्रम से पहले दिन एक हाथ, दूसरे दिन दो हाथ तीसरे दिन तीन हाथ निगले इससे

मुख में रखकर युक्ति पूर्वक, धीरे-धीरे निगल जाय। फिर उसे धीरे-धीरे ही बाहर निकाल दे। किन्तु इस बात का ध्यान रहे कि वस्त्र निगलते समय वस्त्र का अन्तिम छोर दाँतों से न छूटने पावे। क्योंकि ऐसा न करने से कदाचित पूरा वस्त्र कण्ठ के नीचे चला जायगा तो फिर बाहर निकालना कठिन हो जायगा।

निगलने वाला वस्त्र कुछ खुरदरा होना चाहिए क्योंकि अत्यन्त बारीक होने के कारण उदर में जाने पर गाँठ पड़ जाती है तो बाहर निकालने में कष्ट होता है।

इसे वासोधौति अथवा वस्त्र धौति कहते हैं। इसके नियमित रूप से करने से गुल्म, ज्वर, प्लीहा, कुष्ठ एवं कफ पित्त जन्य सारे विकार नष्ट होते हैं। इसे भोजन से पहले ही करना चाहिए।

१- अन्तर्धौति

इसके भी चार भेद इस प्रकार बताये गये हैं। वातसार, वारिसार, वह्निसार और बहिष्कृत।

वातसार—

अपने मुख को कौवे की चोंच के समान करके यानी दोनों ओठों को सिकोड़कर धीरे-धीरे वायु का पान करे। फिर वायु को पेट के अन्दर चारों ओर संचालित करके धीरे-धीरे उसे बाहर निकाल दे। इससे जठराग्नि प्रदीप्त होती है।

वारिसार—

इसे कहते हैं जिसमें मुख द्वारा धीरे-धीरे जल पीकर कण्ठ तक भर लिया जाता है। फिर उदर में चारों ओर संचालित करके गुदा मार्ग द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। इससे देह निर्मल हो जाती है और दिव्य बन जाता है।

वह्निसार—

इसकी क्रिया यह है कि नाभि की गाँठ को मेरु पृष्ठ में सौ बार लगावे। यानी उदर को इस प्रकार बारम्बार फुलावे और पिचकावे कि नाभि ग्रन्थि जाकर पीठ में लग जाया करे। यह जठराग्नि को दीप्ति कर उदर के सब रोगों को नष्ट करती है।

बहिष्कृत—

कौवे की चोंच के समान मुख बनाकर इतनी मात्रा में वायु का पान करे कि पेट भर जाय। फिर उस वायु को डेढ़ घण्टे तक पेट में धारण किये रहे पीछे गुदा मार्ग से बाहर निकाल दे। इसी को बहिष्कृत धौति कहते हैं इससे नाड़ियाँ शुद्ध हो जाती हैं। जब तक आधा घण्टा तक वायु के रोकने का अभ्यास न हो जाय तब तक इसे नहीं करना चाहिए।

दन्त धौति—

इसके भी चार उपभेद इस प्रकार कहे हैं।

जिह्वा मूलं दन्त मूलं
रन्ध्रौ च कर्णयुग्मयोः

कपाल रंध्रं पञ्चैते
दन्त धौति प्रचक्षते

अर्थात—दन्तमूल, जिह्वामूल, कर्णरन्ध्र और कपालरन्ध्र। दन्तमूलमें खैर का रस, सूखी मिट्टी अथवा अन्य किसी औषध विशेष से दांतों की जड़ को अच्छे प्रकार साफ करना चाहिए, यही दन्त मूल धौति कहलाती है।

जिह्वामूल—

तर्जनी मध्यमा और अनामिका उँगलियों को गले के भीतर डालकर जीभ की जड़ तक बारम्बार घिसे। इससे कफ दोष दूर हो जाता है।

कर्णरन्ध्र—

तर्जनी और अनामिका उंगलियों के योग से दोनों कानों के छिद्रों को प्रति दिन साफ करे। यही क्रिया कर्णधौति कहलाती है।

कपाल रन्ध्र—

शयन करके उठने पर भोजन के अन्त में और सूर्यास्त के बाद सिर के बीच के गड्ढे को दाहिने हाथ के अंगूठे द्वारा जल से प्रतिदिन साफ करे। इसे ही कपाल रन्ध्र धौति कहते हैं। इससे नाड़ियों में शुद्धता आती है तथा दृष्टि में दिव्यता प्राप्त हो जाती है।

हृद्धौति—

के भी तीन भेद बताये गये हैं—दण्डधौति, वमन धौति और वसन धौति। इनमें से वसन धौति का उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। इन सभी क्रियाओं से हृदय की शुद्धि की जाती है जो मानसिक शुद्धि से भी कहीं अधिक महत्व की होती है। इन की विधि अपने गुरुदेव से ही जाननी चाहिए।

मूल शोधन—

इसके बाद मूल शोधन—पर ध्यान देना चाहिए। भगवान घेरण्ड कहते हैं कि मूलशोधन अवश्य ही करना चाहिए। जब तक यह क्रिया नहीं की जायगी तब तक अपान वायु दूषित बनी रहेगी। गणेश क्रिया इस में बड़ी सहायक हो सकती है। उंगली डालकर मलद्वार को साफ करने की विधि का नाम ही गणेश क्रिया है।

२- वस्ति क्रिया

इन धौति क्रियाओं के पश्चात, वस्ति क्रिया करनी चाहिए। योगाचार्यों ने इसके दो भेद कहे हैं। एक जल वस्ति और दूसरा स्थल वस्ति। जल वस्ति को जल में तथा स्थल को जमीन पर ही करे।

जल वस्ति करने वाले साधक को चाहिए कि जहां तक नाभि, पानी में डूबी रहे इतने गहरे जल में उत्कट आसन से बैठे होकर मुद्रा द्वारा मल का आकुञ्चन करे और जैसे कर्म जिस प्रकार गले उतारे जाते हैं उसी प्रकार नीचे उठाकर अपान वायु के ऊर्ध्वाकर्षण से जल

को खींचें तो इस विधि से जल तत्काल चढ़ जायेगा। उस जल को थोड़ी देर तक पेट में घुमाकर पुनः उसे गुदा द्वार से ही बाहर निकाल दें, यही जल-वस्ति कहलाती है।

जलवस्ति का फल

प्रमेहं च उदावर्तं
क्रूरवायुं निवारयेत्।
भवेत् स्वच्छन्ददेहश्च
कामदेव समोभवेत्॥

अर्थात् उपरोक्त विधि से जो लोग जल-वस्ति का अभ्यास करते हैं, उनके प्रमेह, उदावर्त आदि सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। क्रूर वायु निकल जाती है तथा इससे वह साधक स्वच्छ देह होकर कामदेव के अनुसार आकृति धारण करता है।

स्थलवस्ति विधि

स्थलवस्ति की विधि इस प्रकार है। साधक को चाहिए कि वह पश्चिमोत्तान विधि से बैठकर अश्विनी मुद्रा के द्वारा गुदा का आकुंचन व प्रसारण करे। इस प्रकार करने से स्थलवस्ति सिद्ध हो जायगी।

स्थलवस्ति का फल

इस प्रकार स्थल वस्ति का अभ्यास करने वाले साधक को कोष्ठ दोष (मन्दाग्नि आदि) नहीं होता। अपितु जठराग्नि प्रदीप्त होती है एवं आमवात की शान्ति होती है।

३—नेति कर्मः

नेतिकर्म का विधान इस प्रकार है।

अर्थात् एक बित्ता लम्बा सूक्ष्म चिकना सूत लेकर नासिका द्वार से प्रवेश कराकर मुख से निकाल ले। इसी का नाम नेति कर्म है।

नेति क्रिया का फल

कपाल-शोधनी चैव दिव्य-दृष्टि प्रदायनी

अर्थात् यह नेति क्रिया कपाल का शोधन करके दिव्य दृष्टि को देने वाली है। सबसे बड़ी खास बात तो एक ही है कि गर्दन के ऊपर के भाग में होने वाली कुल बीमारियों का भी नाश करती है।

जल नेति

टुटईदार एक लोटे की आकृति के पात्र से एक नासिकारन्ध्र से जल डालकर दूसरे नासिकारन्ध्र से उसी जल को निकालना जलनेति कहलाती है। जल नेति के निरन्तर अभ्यास से अवश्य ही नेत्र-दृष्टि की वृद्धि होती है। इसी प्रकार जो लोग प्रातः काल उठकर नासिका से जल पीते हैं यह भी एक प्रकार की जल-नेति है। जो इस प्रकार से नासिका रन्ध्रों से जल पान करते हैं वे मस्तिष्क से सम्बन्ध रखने वाले सभी रोगों का नाश करके अपनी दृष्टि को बढ़ाते हैं।

दुग्धपान नेति

नासिका रन्ध्रों से दूध पीना भी नेति का

ही एक प्रकार है। इस क्रिया के करने से मस्तिष्क की सभी प्रकार की गर्मी व खुश्की दूर होकर पुष्टि होती है तथा कुछ ही दिनों में मुख-मण्डल दिव्यतामय दिखाई देने लगता है। इस प्रकार यह नेति कर्म भेद एवं उप भेदों को लेकर अत्यन्त लाभदायक है। योगाश्रमों में सभी साधक इसका अभ्यास कराया जाता है।

४—नौली कर्म:

अमन्दावर्त वेगेन
तुन्दं सव्यापसव्यतः।
नतांसो भ्रामयेदेषा नौलिः
सिद्धैः प्रचक्षते॥

अर्थात् कंधे उठाकर अपने पेट को थोड़ा झुकाकर दांये और बांये घुमाये इसी का नाम नौली कर्म है।

अर्थात् यह नौलि क्रिया सभी हठ-साधनों में उत्तमोत्तम है। पाचन आदि को ठीक करके मन्दाग्नि को दूर करके सभी दोष एवं आमय आदि का शोषण कर साधकों को परम सुख को देती है। नौली कर्म का क्या प्रभाव होता है? प्रायः सभी योगी साधक भली प्रकार से जानते हैं। इस क्रिया के द्वारा विष तक निकाला जा सकता है। भारत के इतिहास में इसके कितने ही प्रमाण हैं, ईर्ष्यालु लोगों ने अपने द्वेषों के वशीभूत होकर कितने ही महात्माओं को विष दिया और इन लोगों ने इस नौली कर्म विष को निकाल कर अपने आपको बिल्कुल शुद्ध बना लिया।

५—त्राटक कर्म:

निरीक्षेन्निश्चलदृशा
सूक्ष्मलक्ष्यं समाहितः।
अश्रु संपातपर्यन्तमाचा-
र्यैस्त्राटकं स्मृतम्॥

त्राटक कर्म का अभ्यास करने वाले साधक को चाहिए कि किसी सूक्ष्म लक्ष्य को निर्निमेष होकर, अचल दृष्टि से तब तक देखता जाय, जब तक अश्रुपात न हो जाय। योगाचार्यों ने इसी क्रिया को त्राटक कहा है।

अर्थात् यह त्राटक योग का अभ्यास सर्व नेत्र रोगों का हर्ता एवं आलस्य तन्द्रादिक के लिए उत्तम कपाट है। जिस प्रकार नेत्र बन्द कर लेने पर दरवाजे के भीतर मकान में कोई भी प्रवेश नहीं कर सकता है, ठीक उसी प्रकार त्राटक योग का अभ्यासी साधक तन्द्रा आलस्य आदि से बिल्कुल बच जाता है। इसके साथ ही इस त्राटक योग का निरन्तर अभ्यास करने पर शांभवी मुद्रा स्वयं ही आती है व दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है। दिव्य-दृष्टि के हो जाने पर अनायास ही योगी समाधिस्थ हो जाता है।

त्राटक विद्या परम गोप्य है। किसी पूर्ण गुरु से ही इसका उपदेश ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा कई प्रकार की हानि हो जाने की भी सम्भावना हो सकती है।

अपने अनुभवों गुरुदेव जी के सामने बराबर बताना चाहिए। वे जिस-जिस प्रकार से संकेत दें उसी प्रकार अपने अभ्यास को बढ़ाना चाहिए। खान-पान आदि का पूरा-पूरा विचार रखना चाहिए अन्यथा जहाँ इस अभ्यास के द्वारा दिव्यदृष्टि की प्राप्ति होती है वहाँ कई एक अनधिकारी अपनी बेबुद्धिमानी से नेत्र दृष्टि से हीन भी हो बैठते हैं। अतः हठयोग के नियमानुसार अपने अभ्यास को धीरे-धीरे ही परिपक्व करना चाहिये, जिससे किसी प्रकार की कोई हानि की सम्भावना ही न रहे।

कपाल भाति

वातक्रमेण व्युत्क्रमेण

शीत्क्रमेण विशेषतः।

भालभाति त्रिधाकुर्यात्,

कफदोषं निवारयेत्॥

अर्थात् कपाल भाति क्रिया क्रम व्युत्क्रम व शीतक्रम इस प्रकार तीन विधियों से कपाल भाति की जाती है। कपाल भाति के करने से कफादि दोषों की निवृत्ति होती है।

वातक्रम कपाल भाति

वातक्रम करने वाले साधक को चाहिये कि पहले इड़ा नाड़ी के द्वारा श्वास को पूर्ण करे व पुनः पिंगला से रेचन करे और इसके बाद पिंगला से द्वारा पूर्ण करे व इड़ा के द्वारा धीरे-धीरे छोड़ दे। इस प्रकार पूरक व रेचक करे, किन्तु वेग से नहीं प्रत्युत धीरे-धीरे ही अभ्यास करे, ऐसा करने से कफदोष की निवृत्ति हो जायेगी।

व्युत्क्रम कपाल भाति

नासाभ्यां जलमाकृष्य

पुनर्वक्त्रेण रेचयेत्।

पायंपायं व्युत्क्रमेण

श्लेष्मदोषं निवारयेत्॥

अर्थात् दोनों नासिकाओं से जल खींचे व मुख से निकाल दे। ठीक इसी प्रकार मुख से जल लेकर नासिका-रन्ध्रों से निकाल दे, इसी को नाम व्युत्क्रम कपाल भाति है। इसके निरन्तर अभ्यास करने से कफ के विकार नष्ट हो जाते हैं।

शीत्क्रम कपाल भाति

शीत्कृत्पीत्वा वक्त्रेण

नासानालैर्विरेचयेत्।

एवमभ्यास योगेन

कामदेव समोभवेत्॥

अर्थात् बड़े वेग से मुख द्वारा शीत्कार करता हुआ जल को मुख में भर कर नासिकाओं से निकाल दे, बस इसी का नाम शीत्क्रम कपाल भाति है। जो इस क्रिया का निरन्तर अभ्यास करता है तो उसकी आभा भी कामदेव के समान दीखने लगती है। इसके साथ ही जो लोग संगीत प्रेमी हैं उनके कण्ठ अति ही सुन्दर व सुरीले बन जाते हैं। हमने कितने ही गायकों को इस क्रिया का अभ्यास कराया है, जिसका परिणाम यह निकला कि उनके स्वर भंग आदि दोष हट गये, बहुत सुन्दर स्वर बन गया व उज्ज्वल कान्ति को भी प्राप्त हो गये, इसमें महर्षि घेरण्डजी इतना लिखते हैं कि—

योग मार्ग के साधकों को इन षट्कर्मों की साधना अपने गुरुदेव के चरणों में बैठकर निर्धारित रूप से उनके निर्देशानुसार करने से निश्चय ही अभीष्ट फल की प्राप्ति हो जायेगी।

—x—

अन्तर्मौन द्वारा योग-साधना

आचार्य श्री चन्द्रहास शर्मा एम० ए० एम-एड०

प्रदूषण की समस्या महानगरों में दिन प्रतिदिन भयंकर होती जा रही है। मोटर, स्कूटर, कार, हवाई जहाज, रेलगाड़ी आदि का धुँआ तथा होर्न की आवाजें कानों को तथा आँखों को व्याधिग्रस्त बना रही है। कल कारखानों की खटपट तथा धुँए की चिमनियाँ सर्वत्र अशान्ति एवं कार्बन का भण्डार पैदा करने में लगी हैं जिससे श्वास-प्रणाली तथा कर्ण कुहरों के माध्यम से सिर पर धमाका करने वाली व्याकुलता के कारण अधिकांश व्यक्ति विक्षिप्त या असामान्य या रोगग्रस्त होते जा रहे हैं। भूमिगत मलप्रणाली के संचार तथा नदियों में उसका विसर्जन करने के कारण जल तथा पृथ्वी दूषित होकर नाना प्रकार की व्याधियों का जन्म हो रहा है। बाह्य जलवायु के दूषित होने के साथ-साथ मानसिक प्रदूषण भी कम नहीं हो रहा। जिधर देखिये भाषण, गाने, शोर शराबा। रेडियो, व ग्रामोफोन के गाने, धार्मिकता के नाम पर तरह-तरह के तमाशे नाक में दम पैदा कर रहे हैं। जिसको देखिये उसे बोलने की बीमारी हो गई है। हर व्यक्ति अपनी कहना चाहता है। बोलता चला जाता है। उसे इस बात की कतई परवाह नहीं है कि उसके सुनने वालों का क्या कुछ भला हो रहा है? कवि को कविता सुनने वाले चाहिए। नेताओं को भाषण सुनने वाले चाहिए। यदि कोई सुनने वाला नहीं मिलता तो आदमी अपने से ही बातें करने लग जाता है। पेड़-पौधों से बातें करने लगता है। कभी-किसी बुदबुदाने लगता है। मनोविज्ञान में इसे विक्षिप्तता बीमारी का लक्षण माना जाता है, जिसका कारण दमित भावनायें हैं। बोलने वाला अपने मन में जो कुछ अशान्ति होती है उसे सुनने वाले के मन में उतार देना चाहता है। ऐसे व्यक्ति आध्यात्मिक साधना के अधिकारी तीन काल में भी नहीं हो सकते। क्योंकि अधिक बातून जो कुछ बोलेंगे उसमें नब्बे प्रतिशत झूठ, बुराई व परनिन्दा होगी और दस प्रतिशत काम की बात होगी। इससे पापकर्म का एकत्रण बढ़ता जायगा तथा शक्ति का अपव्यय होगा। पर्यावरण प्रदूषण समस्या भी बढ़ती जायगी। कुत्सित विचारों की लहरें, वातावरण में व्याप्त होकर शान्त मन को भी उसी प्रकार अशान्त बना देंगी, जिस प्रकार शान्त तालाब में कोई पत्थर

फेंक दें तो पूरे तालाब में लहरों की शृंखला पैदा हो जाती है।

आध्यात्मिक साधना का मूलमंत्र है—शक्ति संचय करना। कम से कम शक्ति खर्च करो ताकि अधिक शक्ति संचय हो सकती है। शक्ति संचय से एकाग्रता प्रतिपादन सरल होता है। चित्तवृत्ति को क्षोभ अधिक आता है और नाना प्रकार की कल्पनाओं में व्यवस्था करता रहता है। जो शक्ति सम्पन्न है वह व्यक्ति एकाग्र और दृढ़ निश्चयी होगा। मनुष्य द्वन्द्व में जीता है और फिर यह भी चाहता है कि उसे शान्ति और समाधि भी उपलब्ध हो जाय। कई नावों में एक साथ सवारी करने से किसी भी लक्ष्य की उपलब्धि नहीं हो सकती। हमारी कठिनाई यह है कि न हम पूरी ईमानदारी से भोगी हो सकते हैं और न योगी। दोनों हाथों में लड्डू चाहते हैं। मोक्ष प्राप्ति के लिए मौन से बढ़कर शीघ्रगामी कोई और उपाय नहीं है। जैसे को तैसा मिला करता है—यह एक सामान्य नियम है। ईश्वर या ब्रह्म मौन है जैसा कि स्कन्दपुराण में भगवान शंकर ने पार्वती जी से कहा भी है—

अगोचरं तथाऽगम्यमनाम
रूप विवर्जितम्।
निःशब्दं तद् विजानीयात्
स्वभावं ब्रह्म पार्वति॥

अर्थात् हे पार्वती! ब्रह्म का स्वभाव शान्त, मौन तथा निःशब्द है। वह नाम रूप तथा इन्द्रियातीत है। सन्तों ने भी कहा है कि—'इन्द्रिय मन का विषय नहीं, वहाँ न बुद्धि व्यवहार।' अर्थात् ब्रह्म, इन्द्रियों के मन तथा बुद्धि के विषयों से परे शान्त एक रस, सम है। उसको पाने के लिए हमें भी इन्द्रिय विहीन, मन रहित तथा बुद्धि के चिन्तन धर्म से परे होना पड़ेगा। एकान्त में प्रिय से मिलन होगा। हमारी सबसे बड़ी परेशानी यह है कि हम इधर-उधर जंगलों पहाड़ों में एकान्त ढूंढ़ते फिरते हैं। हमारे अन्दर-बाजार है, शोरगुल है। हम अकेले में भी अकेले नहीं हैं, सारी दुनिया की याद, चिन्ता और परेशानी से हर दम भरे हुए हैं। हमने प्यारे के लिए अपने दिल को थोड़ी देर भी तो खाली नहीं किया और शिकायत करते हैं कि हमारा ध्यान नहीं लगता, दर्शन नहीं होते। कुछ देर ही हम जितेन्द्रिय हो जायेंगे। काम क्रोध लोभ मोह से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रह जायगा, मन को छोड़ भूल, संकल्प-विकल्प को थोड़ी देर बन्द कर मन को मौन कर लें तो निःसंकल्पता स्वतः उपलब्ध हो जायगी। इसी तरह बुद्धि का मौन-चिन्तन विचार-शून्य स्थिति उपलब्ध होते ही समतावस्था आ जायगी। इसके आते ही—योगदर्शन में महर्षि पतंजलि कहते हैं—

निर्विचार वैशारद्येऽध्यात्म प्रसादः

अर्थात् वार्ता में निर्विचार स्थिति आते ही अलौकिक सुख की अनुभूति होगी—शान्ति और प्रकाश का अनुभव होगा। अंग्रेजी भाषा में एक कहावत प्रसिद्ध है—

Speech is Silver but Silence is gold.

अर्थात् वार्ता की अपेक्षा मौन हजार गुना कीमती है। वाणी, मन तथा बुद्धि—तीनों का मौन सध जाय तो मौन में रहने वाले के साथ बात-चीत होने लगेगी।

रसना तथा जिह्वा एक ही इन्द्रिय है किन्तु उसके दो कार्य हैं—बोलना तथा आस्वाद लेना। ईश्वर ने कर्मेन्द्रियों और ज्ञानेन्द्रियों को अलग-अलग बनाया है किन्तु जिह्वा को कर्म और ज्ञान दोनों कार्य करने की स्वतन्त्रता दे दी है। इसी इन्द्रिय के ठीक-ठीक व्यवहार से व्यक्ति परमात्मा को उपलब्ध हो सकता है और इसके दुरुपयोग से इस लोक में झूठा, बेईमान, अहंकार अपयश लेता है तथा भक्ष्याभक्ष्य का आहार कर बुद्धिभ्रष्ट हो नरकगामी बनता है।

प्रिय सत्य तथा हितकारी सत्य बोलना सर्वोत्तम तप है। इसका पालन न हो सके तो मौन साधना सबसे अच्छा तप है। अतः से यदि अपने विचार प्रकट करने पर हमने नियन्त्रण कर लिया और हावभावों से भी विचार प्रकट नहीं करते तो वह स्थिति काष्ठ-मौन स्थिति कहलाती है। जब ज्ञान को परिपक्व तथा उपलब्ध हो जाता है तो 'ज्ञाने मौनम्' की स्थिति आती है जिसे 'सुषुप्ति मौन दशा' कहते हैं। वाणी व्यवहार के लिए—कहने वाला, सुनने वाला तथा बात चीत का विषय—ये तीन बातें आवश्यक हैं। पूर्णावस्था हो जाने पर सुनने वाला और कहने वाला तथा विषय तीनों ही जब ज्ञानरूप हो गये— एक हो गये तो कौन किससे क्या कहे। मौन—केवल मौन—मौन के सिवा और कुछ नहीं ये स्थिति पूर्ण ज्ञानी की होती है।

अध जल गगरी छलकत जाय।
भरी गगरी मा मुँदित जाय॥

विचार संकल्प तथा विषयतृष्णा जिस क्षण लुप्त हो जाते हैं उसी क्षण हम हद से परे अनहद में पहुँच जाते हैं। हमारी इच्छा क्रिया व ज्ञान शक्ति अनन्त के साथ एक रस हो जाती है उस समय हमारी वाणी 'ऋतम्भरा' से निकलती है जो कि सत्य के सिवाय और कुछ नहीं होती। अमोघवाणी मौनदशा में ही प्राप्त होती है। उस अवस्था में जैसा चिन्तन किया जाय वैसा परिणाम अवश्य सामने घटित होता है। शाप वरदान इसी अवस्था में सत्य होते हैं। क्योंकि इस स्थिति में हमारा सम्बन्ध अनन्त शब्द शक्ति, अनहद नाद तथा सत्-चित्-आनन्द से साक्षात्कार हो जाता है। मौन से सुषुम्ना द्वार खुलता है,

भावनाओं तथा रोगों पर जबरदस्त नियंत्रण हो जाता है। धैर्य, मन की शान्ति, आत्म विश्वास, एकान्तप्रियता, संकल्प शक्ति का विकास तथा अन्तर्मुख प्रवृत्ति का प्रादुर्भाव होता है। मौन साधना आवश्यक है। बौद्ध-धर्म में सम्यक् वाक् को नियमों के अन्तर्गत बहुत महत्व दिया गया है। अष्टमार्ग के अभ्यास से सम्यक् ज्ञान की प्रतीति एवं स्थिति होती है।

जिन्हें मौन होने की कला आ गई वे भीड़ में रहकर भी एकान्त का आनन्द ले सकते हैं तथा घर में रहते हुए ही वन का सुख प्राप्त कर सकते हैं। मौन में पहुँचकर ब्रह्मा, विष्णु, भगवान सदाशिव का ध्यान करने से घटपट समाधि सिद्ध होती है। वाणी से कुछ न कहना ही मौन नहीं है बल्कि मन और बुद्धि का अन्तर्मौन सच्चा मौन है। जो वाणी से कुछ नहीं कहते किन्तु मन में विचारों की खिचड़ी पकाया करते हैं उन्हें भगवान श्रीकृष्ण ने मिथ्याचारी, ढोंगी तथा पाखण्डी कहा है:—

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य
य आस्ते मनसा स्मरन्।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा
मिथ्याचारः स उच्यते॥
३/६

इन्द्रियों के बाह्य व्यापार को रोकने पर अन्तर्मुखी बना जा सकता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह रूपी राक्षस अज्ञान के द्वारा आत्मा को आनन्द मार्गों से आवृत कर देते हैं। भगवान कृष्ण कहते हैं:—

तस्मात्त्वमिन्द्रियाण्यादौ
नियम्य भरतर्षभ।
पाप्मानं प्रजहि ह्येनं
ज्ञान विज्ञान नाशनम्॥
३/४१

ज्ञान विज्ञान को नष्ट करने वाली पाप रूपी इच्छा को इन्द्रिय जय के द्वारा हे अर्जुन नष्ट करो क्योंकि इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि इस इच्छा के अधिष्ठान हैं।

मौन साधना से परमशक्ति की प्राप्ति हो जाती है। निर्भरशक्ति पाकर जप-तप-संयम करने नहीं पड़ते ईश्वर की कृपा यहां प्राप्त होती है तथा साधन स्वतः हो जाते हैं। कबीर ने इस अवस्था का वर्णन किया है:—

माला जपूं न कर जपूं
मन में जपूं न राम।
राम हमारा हमें जपे
हम पाये विश्राम॥
कबिरा मन निर्मल भया
जैसे गंगा नीर।
पीछे पीछे हरि फिरे
कहत कबीर कबीर॥

मौन साधना सच्चे अर्थों में हो जाय तो साधक योगी बन जाता है, जीवन्मुक्त हो जाता है। कुलार्णवतंत्र के नवमोल्लास में कहा गया है कि जिसका इन्द्रिय समूह निष्पन्द हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसने वायु को अपने में लीन कर लिया है, जो मृतवत् हो गया है, वह जीवन्मुक्त है। जिसका वायु-संचार नष्ट हो गया है, जो सहज में पाषाण-वत् जो स्थित है, परमात्मस्वरूप का जिसे पूर्णज्ञान है, जो जाग्रत और स्वप्न अवस्था में भी सुषुप्तिवत् स्थित रहता है, वह योगी हो जाता है। जिसकी बाहर सूंघने, सुनने, स्पर्श करने और देखने की क्रिया रुक गई है तथा सुख-दुख में एक रस है, निःसंकल्प और विचार बोध विहीन हो काष्ठवत् मौन हो गया है, परम शिव में लीन होकर वह समाधिस्थ रहता है। जैसे गहरे अंधेरे में व्यक्ति कुछ भी नहीं देख पाता उसी प्रकार योगयुक्त को यह प्रपंच भासित नहीं होता। इस प्रकार मौन-साधना से देहाभिमान नष्ट हो जाने पर परमात्मज्ञान, आत्म बुद्धि युक्त होकर योगी का जहाँ भी मन जाता है वहीं-वहीं उसे समाधि अवस्था प्राप्त होती रहती है परमात्मा के दर्शन कर हृदय की ग्रन्थियां (ब्रह्म, विष्णु तथा रुद्र ग्रन्थि) खुल जाती है, सभी संशय नष्ट हो जाते है तथा कर्म समुच्चय का आत्यन्तिक क्षय हो जाता है। उसके पश्चात् योगी की सर्व कर्म निवृत्ति ही सर्वोत्तम पूजा है, मौन ही सर्वोत्तम जप है, विचार रहित होना ही सर्वोत्तम ध्यान है और किसी प्रकार की इच्छा न होना ही परम फल है—'जिनको कछू न चाहिये वे शाहन के शाह।'

निष्पन्द करग्रामः
स्वात्मलीन मनोऽनिलः।
य आस्ते मृतवत्साक्षात्
जीवन्मुक्तः स उच्यते॥
प्रणष्ट वायु संचारः
पाषाण इव निश्चलः।
परजीवैक्य-भावज्ञो
योगी योग विदुच्यते॥
स्वप्न जाग्रत् अवस्थायां
सुषुप्तिवत् योऽवतिष्ठते।
निःश्वासोच्छ्वास-हीनश्च
निश्चितं मुक्त एव सः॥
न शृणोति न चाघ्राति
न स्पृशति न पश्यति।
न जानाति सुखं दुःखं
न संकल्पयते मनः॥
न चापि किञ्चिज्जानाति
न च बुध्येति काष्ठवत्।
एवं शिवे विलीनात्मा
समाधिस्थ यह उच्यते॥
यथा गाढान्धकारस्थो
न किंचिदिह पश्यति॥

जलतरङ्ग तथा योगी
प्रारब्धं नैव पश्यति ॥
देहाभिमाने गलिते
विज्ञाते परमात्मनि ।
यत्र यत्र मनो याति
तत्र तत्र समाधयः ॥
भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छि-
द्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि
तस्मिन्दृष्टे परात्मनि ॥
× × × ×
अक्रियैव परा पूजा
मौनमेव परो जपः ।
अचिन्त्यैव परं ध्यानं
अनिच्छैव परं फलम् ॥

कुलार्णव तंत्र ९/२८

साधना की भाषा मौन ही है। जो बहुत कहते और बहुत सुनते रहते हैं वे किताबी पंडित और ग्रन्थ पर्वत शिखर बन जाते हैं। उनके हृदय तर्क के जाल भले हो जाएँ पर भक्ति का उदय नहीं हो पाता है। मौन की भाषा में ही आत्मानन्द कहा जा सकता है। शब्द से कहने पर ब्रह्मानन्द झूठा हो जाता है—सीमित हो जाता है। शब्द माया की भूमिका पर रहता है। उससे परे निःशब्द अवस्था है, वही ब्रह्म है। गुरुदेव का असली उपदेश मौन में ही होता है और मौन रहकर ही वे हृदय साधकों को चुपचाप वाञ्छित दिशा में घुमा देते हैं। मौन व्याख्यान से ही गुरुदेव शिष्यों के सारे सन्देह दूर कर देते हैं। शास्त्रों में कहा गया है :—

गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं
शिष्यास्तु छिन्न संशयाः ।

अचिन्त्यतत्त्व, इन्द्रिय, मन-वाणी से परे, देश काल की हद से परे अनहद है। मौन द्वारा हम कालातीत, देशातीत, विचारातीत, भावातीत तथा शब्दातीत सत्ता के क्षेत्र में प्रवेश करते हैं। इसी क्षेत्र का नाम समाधि है। अच्छे सद्गुरु भाषणबाजी कम किया करते हैं। मौन से ही सारा काम कर देते हैं। जो कुछ मौन की अवस्था में जाते हैं वे तैलङ्ग स्वामी की तरह काष्ठमौन पाषाण शिलावत् हो जाते हैं। १९ वीं सदी के उत्तरार्द्ध में वाराणसी में सचल शिव के रूप में तैलंग स्वामी रहा करते थे। वे गंगा में पद्मासन लगाये कमल के पुष्प की तरह इधर से उधर घूमते रहते थे। उनकी सारी शारीरिक क्रियाएँ समाप्त हो गई थीं। वे पूर्णरूपेण जीवनमुक्ति की अवस्था में स्थित थे। आँख उठाकर देखना भी नहीं होता था, किसको देखते? आत्मा से भिन्न कोई और वस्तु होती तो देखें? सब कुछ ही आत्मस्वरूप है—फिर दृश्य द्रष्टा और दृष्टि का भेद ही समाप्त हो गया। भला आँख भी उठाने आप

भाव को देखती है ? वाराणसी भगवान विश्वनाथ की पावन नगरी है। यहाँ भगवान सदाशिव साकार रूप में सदा रहते हैं। त्रैलंग स्वामी जैसे सिद्ध पुरुष सदा सर्वदा सर्वकाल में यहाँ विद्यमान रहते हैं। ऐसे पुरुषों को पहचानने की आँख चाहिए आज भी यहाँ ऊँची अवस्था के सिद्धपुरुष मिल सकते हैं ?

लौकिक व्यवहार में भी मौन, जीवन को प्रायः पतन से बचाकर उन्नत शिखर पर ले जाता है किसी से बोल चाल के लिए मौन हो जाना अच्छा है। अपने सत्कर्म गुणगान करने में भी मौन हो जाने से पुण्य क्षय नहीं होता। यदि कोई दान देकर उसका आख्यान कर देता है तो उसका पुण्य उसी समय समाप्त हो जाता है। मंत्र-जाप भी मौन होकर करना श्रेयस्कर है। हमारे पर्वों में 'मौनी अमावस्या' का माहात्म्य साधना की इसी रहस्यता को स्वीकार करता है। मौन-साधना करने पर वाक् सिद्धि शीघ्र हो जाती है। जब दो लोगों में वादविवाद हो रहा हो तो यदि एक व्यक्ति चुप हो जाय तो दूसरा अपने आप शान्त हो जायगा। लोक में कहावत भी प्रचलित है—'एक चुप सौ को हरा देता है।'

गीता में भगवान ने आत्म विभूतियों का उल्लेख करते हुए मौन को परमगुह्यज्ञान और आत्मस्वरूप बताया है। 'मौनं चैवास्मि गुह्यानाम्' गुह्यज्ञान का अधिकारी मौनी ही होता है। जिस घड़े में छेद हो उसमें मूल्यवान वस्तु नहीं रखी जाती। इसी प्रकार ब्रह्म विद्या का वही अधिकारी है जो समुद्र पीकर भी ओष्ठ सूखे रखता है। सब कुछ किया होता है उस की गोप्य सम्पत्ति सुरक्षित रहती है अन्यथा अहंकार सभी बरबार लुटाकर योगी को खाली कर देते हैं। विश्वासघातक कपटी चपल व्यक्ति कदापि नहीं हो सकते। गुरुदेव उन्हें बाहर का संसारजन्य मान-प्रतिष्ठा भले ही दे दें तो भी आन्तरिक वस्तु योग समाधि नहीं देते। क्योंकि अपात्र के पास जाकर विद्या नष्ट हो जाती है शतपथ ब्राह्मण में एक मंत्र है जिसमें विद्या ब्राह्मणों से कहती है कि मैं तुम्हारी शरण हूँ, तुम्हारा धन हूँ, मुझे गुप्त रखकर मेरी रक्षा करना। मुझे लंपट, चापल और व्यभिचारी तथा गुरु न चाहने वाले को कदापि न देना। अन्यथा मैं वीर्यवती नहीं रहूँगी। वीर्यवती का अर्थ है अन्यों को प्रकाशित करने तथा पुनः शक्तिशाली बनाने की सामर्थ्य—

विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम
शेवधिरस्मि·········।

तंत्र शास्त्रों में बार-बार यह चेतावनी दी गई है—

गोपनीयं गोपनीयम्
गोपनीयम् प्रयत्नतः।

जिस प्रकार एटमबम्ब का सिद्धान्त हर एक के हाथ लग जाय तो एक क्षण में विश्व संहार हो जायगा। बन्दर के हाथ में दिया-सलाई पड़ जाय तो वह अपनी दुम में सबसे पहले आग लगा लेगा। इसी प्रकार इन्द्रिय संयम के न होने वाले को योगाभ्यास कराया जायगा तो शक्ति जगते ही वह पागल अहं-कारी तथा लोगों को शाप और वरदान देकर अपने जन्म मरण के चक्र को पुण्य पाप के आगे से समाप्त करने के स्थान पर बढ़ाने वाला हो जायगा। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी ऐसे साधकों को अपने पास से अलग कर देते थे जो अपनी शक्ति को सम्भाल नहीं पाते थे। प्रदर्शन तथा अपनी पूजा करवाने के चक्कर में पड़ते थे। वे ऐसे साधकों के विषय में पंजाबी में कहा करते थे—भाण्डे तो मिले मगर फूटे मिले। अर्थात् पात्र तो मिले किन्तु फूटे मिले हैं। जिनमें से रिसकर सारा पदार्थ निकल जायगा और फिर वे खाली के खाली हो जायेंगे जिससे सारा परिश्रम व्यर्थ हो जायगा।

आनन्दकन्द योगेश्वर श्रीकृष्णचन्द्र ने गीता के बारहवें अध्याय में अपने प्रिय भक्त लक्षणों का निरूपण करते हुए कहा है कि :—

तुल्य निन्दा स्तुति र्मौनी
संतुष्टो येन केनचित् ।
अनिकेतः स्थिरमतिर्भक्ति-
मान्मे प्रियो नरः ॥
१२/१९

अर्थात् जो निन्दा और स्तुति में सदा एक भाव से रहता है तथा मितभाषी तथा मौनी है, जो कुछ प्राप्त हो गया उसी को प्रभु का प्रसाद समझकर उसमें सन्तुष्ट है, किसी घर के प्रति मोह नहीं रखता, दृढ़ संकल्प तथा भक्ति से युक्त है, वह मनुष्य मेरा प्रिय है। भगवान ने अपने इस उपदेश को 'धर्म्यामृत' तथा धर्मानुकूल तथा अमृत के तुल्य आत्मा को जीवन देने वाला कहा है। जो उन के इस उपदेश का आचरण? 'पर्युपासते' पालन करते हैं वे भगवान के अत्यधिक प्रिय भक्त होते हैं। ऐसे भक्तों के वश में भगवान हो जाते हैं। मौन साधना से परम प्रसाद मिलता है। मौन मानस तप कहा गया है। देखिये :—

मनः प्रसादः सौम्यत्वं
मौनमात्मविनिग्रहः ।
भाव संशुद्धिरित्येतत्
तपो मानसमुच्यते ।
—गीता १७/१६

अर्थात् मन को प्रसन्न रखना, सौम्यता, मौन, आत्म संयम और सद्भावना—ये सब मानसिक तप कहलाता है। गीता के १८ वें अध्याय के ५२ वें श्लोक में शान्ति तथा ब्रह्मत्व की प्राप्ति के साधन के रूप में यतवाक्कायमानसः का भगवान ने उपदेश दिया है।

एक महात्मा के पास साधक पहुँचा। वह

बिनु श्रम नारि परम गति लहई।

श्रीमती सरिता भारद्वाज एम० ए० बी-एड०

स्त्री और पुरुष में ऊपर के आवरण का ही भेद है। शरीर बुद्धि को छोड़कर तात्त्विक दृष्टि से देखा जाय तो दोनों में एक ही आत्मा है। स्त्री-पुरुष के जन्म और मरण में भी कोई भेद नहीं है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से देखा जाय तो पुरुष में स्त्री के तथा स्त्री में पुरुष के चिह्न मौजूद होते हैं। फिर भी सूर्य और चन्द्र की प्रधानता से शरीर भेद होता है। भगवान शिव अर्द्धनारीश्वर कहलाते हैं। बिना स्त्री की सहायता के जीव का कल्याण नहीं होता। प्रत्येक शरीर में स्त्री के रूप में कुण्डलिनी माँ का निवास है तथा उसी शरीर में पुरुष रूप में भगवान शिव का भी निवास है। भगवती कुण्डलिनी उमा, पार्वती, दुर्गा, भवानी आदि नाम वाली समुद्र के तट पर पश्च और पूर्वी अरब के संगम पर कन्या-कुमारी में मूलाधार और स्वाधिष्ठान के समीप स्थित है। भगवान सदाशिव सहस्रार-चक्र में कैलाश शिखर पर हैं। इन दोनों का जब तक मिलन होता तब तक आनन्द तथा शान्ति एवं जन्म मरण के चक्र से मुक्ति नहीं हो पाती। दोनों के मिलन के लिए ही तपस्या ध्यान एवं समाधि का अभ्यास अपेक्षित है। तात्त्विक दृष्टि से स्त्री में चन्द्र की प्रधानता है और पुरुष में सूर्य अंश की। अतः स्त्री को भाव प्रधान साधना की आवश्यकता है और

(पिछले पृष्ठ का शेष)

महात्मा जी से बोला—महाराज मेरे कल्याण का मुझे उपदेश दीजिए। महात्मा ने कहा, अच्छा, कल आना। साधक दूसरे दिन आया और उपदेश के लिए प्रार्थना करने लगा। महात्मा एक घण्टे शान्त बैठे रहे और अन्त में साधक से बोले—कल आना। साधक निर्दिष्ट समय पर उपस्थित होकर उपदेश की प्रार्थना करने लगा। महात्मा जी ने पूर्ववत् क्रम एक महीने तक दुहराया। अन्त में साधक के धैर्य का प्याला छलक उठा और बोला—भगवान आप रोजाना बुलाते हैं पर उपदेश नहीं देते। महात्मा जी बोले मैंने तब का उपदेश तो कर दिया। मूर्ख तू है तू समझा नहीं। शान्त होकर मौन होकर मौन अवस्था में पहुँच कर मौन ही था, पूर्ण हो जायगा। यही उपदेश मैं क्रियात्मक रूप से तुझे देता रहा हूँ।

—x—

पुरुष को उर्म एवं प्राण प्रधान साधना की आवश्यकता है।

प्रत्येक स्त्री में पुरुष के गुण होते हैं और प्रत्येक पुरुष में स्त्री के। किन्तु ये गुण गौण रूप में ही होते हैं। कुछ गुण तो स्त्रियों में पुरुषों से अधिक भी बताये जाते हैं। यथा—

स्त्रीणां द्विगुण आहारो,
लज्जा चापि चतुर्गुणाः।
साहसं षड्गुणं चैव,
कामश्चाष्टगुणः स्मृतः॥
—चाणक्य

आचार्य चाणक्य के मतानुसार स्त्रियों में पुरुषों की अपेक्षा भोजन की आवश्यकता दो गुनी, लज्जा चार गुनी, साहस छः गुना और काम आठ गुना होता है जिस तरह रोगी की प्रकृति को जानकर उसे औषधि दी जाती है उसी प्रकार प्रकृति के अनुसार ही साधना का निश्चय किया जाता है। स्त्रियों के लिए कठोर और उग्र साधनायें उचित नहीं हैं। वे ध्यान योग के द्वारा शीघ्र योगिनी बन सकती हैं। प्रकृति ने उनके शरीर को ऐसा बनाया है कि उनकी नाड़ी शुद्धि थोड़े से अभ्यास से ही हो जाती है। उनके शरीर में रक्त परिभ्रमण की क्रिया तेज होने के कारण स्त्रियों में भावुकता अस्थिरता तथा उद्वेग अधिक होता है। वे अधिक समय तक किसी एक विषय पर एकाग्र नहीं हो सकतीं। किन्तु भाव योग के अभ्यास द्वारा वे दूसरे के चित्त में अपना चित्त मिला दें, मन में मन मिला दें तो प्रेम योग के द्वारा अधिक देर तक समाहित चित्त हो सकती हैं। इसी लिये स्त्रियाँ क्षण में हँसती हैं और क्षण में रोने लगती हैं। स्त्रियों की प्रकृति मृदु होती है किन्तु भाव के वश होकर उन का निश्चय बहुत दृढ़ होता है।

जो स्त्रियाँ क्रिया करती होती हैं वे ही अपने निश्चय में दृढ़ हो पाती हैं। अधिकांश स्त्रियाँ प्रकृति के गुणों के वश में होने के कारण माया रूपा होती हैं जो अपने कामना से ही छुटकारा नहीं मिलती। अत्यधिक देह बुद्धि होने के कारण उनका जन्म-मरण मुश्किल से छूट पाता है। ऐसी स्त्रियों के लिए ही गोस्वामी जी ने कहा है:—

अवगुन मूल सूलप्रद
प्रमदा सब दुःख खानि।
× × × ×
काम क्रोध लोभादि,
प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुण
दुःखद माया रूपी नारि॥

जो अविद्या और माया रूपी नारियाँ हैं उनमें 'अवगुन आठ सदा उर रहहीं' तो शक्ति अविद्या होती हैं। संसार की नजरों में जानते

के लिए स्त्री उत्तम ऋतु की तरह है। कलिहारी नारी किसी घर की गृहणी बन जाती है तो कलह क्रिया, कटुभाषणी तथा अपनी माया से घर को नरक बना देती है। जलाशय तथा झरने गर्मी की ऋतु में जैसे सूख जाते हैं वैसे ही कुलटा के घर में आने पर घर के नियम, जप तप पूजापाठ तिरोहित हो जाते हैं। इसीलिए सन्त तुलसी ने नारि को अंधेरी रात की उपमा दी है—

पाप उलूक निकर सुखकारी।
नारि निबिड़ रजनी अंधियारी॥

इससे भिन्न जो गृहलक्ष्मी नारियाँ हैं वे सरस्वती, दुर्गा, लक्ष्मी स्वरूपा होती हैं। उनकी आकृति सौम्य होती है। भाषा में कर्कशता नहीं अपितु माधुर्य होता है। उनका जीवन सरल और कोमल सात्विक भावों का उदय होता रहता है।

गुरु पितु मातु बन्धु पतिदेवा।
सब मोहि कहँ जाने दृढ़ सेवा॥

घर के सब प्राणियों की सेवा आदरभाव से मन लगाकर वह ध्यान कर लेती है कि यह ईश्वर की सेवा है। सभी में—ईश्वर बुद्धि रखने से यह सेवा भार नहीं बनती अपितु वही सेवा भजन और भक्ति बन जाती है। दिव्य सती नारी के दो आभूषण हैं—समर्पण और सेवा। भारतीय नारी अपनी सन्तान, सास-ससुर, पति आदि सब के लिए इतना त्याग और तप करती है कि जिसे देखकर पश्चिमी देश की नारियाँ आश्चर्य चकित हो जाती हैं। जब योरोप की नारियाँ यह सुनती हैं कि भारतीय नारी अपने पति को प्राण से भी अधिक प्रेम करती है और सुख-दुःख में जीवन भर साथ देती है तो उन्हें विश्वास नहीं होता। क्योंकि वे शादी के पहले से लेकर अन्त तक सुख की तलाश में इधर से उधर भटकती फिरती हैं। पूरे जीवन में एक स्त्री न जाने कितने बार तलाक देती है। इसीलिए पाश्चात्य देशों में भौतिक समृद्धि चरम सीमा पर होने पर भी मनुष्य के जीवन में आनन्द और शान्ति नहीं है। शान्ति की खोज क्लबों, होटलों, और नींद की गोलियों, गंदी फिल्मों तथा मादक पदार्थों में वहाँ के लोग भटक रहे हैं। बिना सेवा त्याग समर्पण तथा धर्मनिष्ठा के शान्ति कैसे मिल सकती है। पतिव्रता नारी अपने पतिदेव को तन-मन समर्पित कर उसकी सेवा से घर की स्वामिनी बनकर आनन्द का अनुभव करती है और एक वेश्या इधर-उधर भटक कर धर्म तथा शरीर सब कुछ गंवाकर खाक की खाक रह जाती है।

भारत में ऐसी सैकड़ों देवियाँ हो गई हैं। जिन्होंने अपने पतिव्रत धर्म के प्रभाव से योग की उच्चतम गति प्राप्त कर ली थी। अत्रिऋषि की सहधर्मिणी अनसूया ने पातिव्रत धर्म के प्रभाव से ब्रह्मा-विष्णु और महेश को छोटा बालक बनाकर गोद खिलाया था। ऐसी ही

सती साध्वी सावित्री ने पातिव्रत धर्म की शक्ति से काल को ललकार दिया। जो यम उसके पति सत्यवान के प्राण लेने आया था वह सावित्री की भक्ति और शक्ति देखकर उसके पति को अमर बना गया।

सती अनसूया ने जगज्जननी सीता को नारि धर्म का उपदेश देने के बहाने पातिव्रत साधना के रहस्य का उद्घाटन किया है—

एकहि धर्म एक व्रत नेमा।
काय वचन मन पतिपद प्रेमा॥

सती अनसूया ने चार प्रकार की पतिव्रताओं का उल्लेख किया है—उत्तम, मध्यम, अधम तथा अधमाधम। उत्तम पतिव्रता वे होती है जिनका मन अपने पतिदेव में उसी तरह एक रस रहता है जैसे मछली का मन जल में रहता है। उत्तम पतिव्रता पर पुरुष का स्वप्न में भी चिन्तन नहीं करती। मध्यम पर पुरुषों को भाई, पिता तथा पुत्र दृष्टि से देखती है। जो धर्म तथा कुल की मान-मर्यादा का विचार कर विवशता में मन को रोक पाती है वे अधम कोटि की है। जो अवसर और भय से पतिव्रत पालन में तत्पर रहती है वे चतुर्थ प्रकार की है। मजबूरी से कोई काम किया जाय तो वह साधना नहीं अपितु श्रम-मात्र होता है जैसे जो शक्ति हीन है वह साधु बन जाय तो वह मजबूरी का साधु है। इसीप्रकार निर्धनता के कारण किसी की शादी न हो फिर वह कहे कि हम ब्रह्मचारी है। जिसे अनेकों रोग सताते हों वह यदि देवता की भक्ति करता है तो वह स्वार्थ वश है, असली भक्ति नहीं कही जा सकती। इसी प्रकार वृद्धावस्था में अंग शिथिल होने पर कोई पतिव्रता हो जाय तो उसे वास्तविक नहीं कहा जा सकता।

अशक्तस्तु भवेत्साधुः,
ब्रह्मचारी च निर्धनः।
व्याधिष्ठो देवभक्तश्च,
वृद्धाः नारी पतिव्रता॥
—चाणक्य नीति

जो नारी अपने पति को धोखा देती है वह अपना अगला जन्म बिगाड़ लेती है। छल रहित होकर सच्चे मन से यदि पति की सद्-लिप्त कर सेवा करती है और अपने पति को ध्यान योग की ओर प्रेरित करती है, अपने में तथा घर में उसकी आसक्ति कम करती है वह अपनी मनोलय साधना से पति की कमाई को सरलता से पा जाती है। इसी तरह जिन पुरुषों की धर्मपत्नियां योगध्यान परायण है। उनको भी धर्मपत्नी के द्वारा योग स्थिति प्राप्त हो जाती है। पतिपत्नी का सम्बन्ध धर्म का जीवन में साक्षात्कार करने के लिए है। जब दोनों में प्रेम होगा, सेवाभाव होगा तो एक को साधना का अवसर आसानी से मिल जायगा और उसकी शक्ति दूसरे को मन के संकल्प से प्रेम की धारा द्वारा बिना परिश्रम के सहज रूप मिल जायगी। ॐ

❋ कुण्डलिनी शक्ति रहस्य ❋

❀ स्वामी श्री ब्रह्मानन्द जी

गोलाकार गेंडुर मारे रहने से सर्प को कुण्डली कहते हैं। उसी की तरह गेंडुर मारे रहने से प्राण शक्ति भी कुण्डलिनी कही जाती है। यह साढ़े तीन कुण्डल लपेटे हुए मूलाधार के ऊपर सोयी रहती है, परन्तु जाग्रत होने पर सीधी हो जाती है। मानव-देह में मेरुदण्ड के नीचे मूलाधार चक्र है। यहीं एक त्रिकोण स्थान में भुजंगरूपिणी कुण्डलिनी शक्ति सुप्तावस्था में स्थित है। साधना द्वारा इसे ही जाग्रत करना होता है।

मानव-देह में मेरुदण्ड के मध्य एक सूक्ष्म ज्योतिर्मय मार्ग है, जिसे सुषुम्ना कहते हैं। सुषुम्ना-मार्ग के नीचे और ऊपर दो छिद्र होते हैं। निचले छिद्र को सुप्तकुण्डलिनी अपने मुँह बन्द किये रहती है तथा ऊपरी छिद्र ब्रह्मरंध्र है। सुषुम्ना पथ में नीचे से ऊपर तक कुल सात चक्र होते हैं। उन चक्रों के नाम और स्थान इस प्रकार हैं—

१-मूलाधारचक्र—मेरुदण्ड के नीचे, २-स्वाधिष्ठानचक्र-मूलाधार के ऊपर, ३-मणिपूरचक्र—नाभि में, ४-अनाहतचक्र—हृदय में ५-विशुद्धिचक्र—कण्ठमूलसन्धि में, ६-आज्ञाचक्र—दोनों भौंहों के बीच, तथा ७-सहस्रारचक्र—सिर के ऊपरी भाग में।

सामान्यतया कुण्डलिनी सोयी रहती है। अपान तथा प्राणवायु के साथ सम्मिलित योग से यह जाग्रत होती है और प्राणवायु के सुषुम्ना पथ से ऊपर की ओर यात्रा करती है।

अपान-वायु नाभि से नीचे के भागों में पहले से ही प्राकृतिक रूप से विद्यमान रहती है, केवल प्राणवायु को प्राणायामद्वारा खींचकर अपान-वायु से मिलाया जाता है और इसके सम्यक् प्रयोग से कुण्डलिनी जाग्रत होकर ऊपर चढ़ना प्रारम्भ कर देती है।

कुण्डलिनी जागरण उद्देश्य

कुण्डलिनी-जागरण द्वारा ही आत्मसाक्षात्कार सम्भव है। जबतक यह शक्ति जाग्रत नहीं होती, तबतक सभी दिव्य शक्तियाँ भीतर सोयी रहती हैं। बिना कुण्डलिनी जागरण के किसी भी तन्त्र-मन्त्र-यन्त्र अथवा पूजा अनुष्ठान में सिद्धि प्राप्त नहीं होती। कुण्डलिनी-जागरण से अनेक पूर्वजन्मों का ज्ञान हो जाता है। भूत और भविष्य की सारी घटनायें पहले ही ज्ञात हो जाती हैं। सूक्ष्म लोकों के दृश्य दिखायी पड़ने लगते हैं। एक के बाद एक

अनेकों ब्रह्माण्ड के रहस्य खुलने प्रारम्भ हो जाते हैं। इसके जागरण से भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों ही प्रकार की सफलताएँ होती हैं।

कुण्डलिनी का रहस्य

कुण्डलिनी विद्युत्-आभायुक्त कुण्डली एवं लचकदार होती है, उसकी पूँछ मूलाधार से जुड़ी रहती है। यह कुण्डली शक्ति संकोच और प्रसारणशक्ति-सम्पन्न होती है। कुण्डलिनी की पूँछ में दो तत्त्व होते हैं और सिर में तीन तत्त्व होते हैं।

क्या कुण्डलिनी स्वतः भी जाग्रत हो सकती है?

यदि पिछले जन्मों में किसी की कुण्डलिनी जाग्रत् हो चुकी है तो इस जन्म में भी वह जाग्रत अवस्था में ही रहती है और कभी-कभी अचानक ही स्वतः जागकर सहस्रार तक पहुँच जाती है और व्यक्ति को आत्मसाक्षात्कार हो जाता है।

कुण्डलिनी जागरण एवं पूर्व-जन्मों की स्मृतियाँ

यदि किसी की कुण्डलिनी जगी हो तो उसकी चेतना माँ के गर्भ में बनी रहती है। महाभारत में एक कथा का उल्लेख है कि जब अर्जुन अपनी पत्नी सुभद्रा को चक्रव्यूह-भेदन की विधि बता रहे थे तो व्यूह छः द्वारों तक तोड़ने की विधि उन्होंने बतायी। उस समय सुभद्रा के गर्भ में अभिमन्यु था, जिसकी कुण्डलिनी जगी हुई थी और उसने छः द्वारों को तोड़ने की विधियाँ सुनीं, जो उसे गर्भ से बाहर आने के बाद भी स्मृति में बनी रहीं।

बहुत से छोटे बालकों को अचानक उनके पूर्वजन्म की कुछ स्मृतियाँ याद आ जाती हैं, यह केवल कुण्डलिनी जागरण से ही सम्भव है। अचानक उनकी कुण्डलिनी किसी चक्र को भेदती है, जहाँ पूर्वजन्म की स्मृतियाँ इकट्ठी रहती हैं और बालक को अपना पूर्वजन्म याद आ जाता है।

अनेक साधकों को कुण्डलिनी-जागरण के दौरान उनके पूर्वजन्म की बहुत-सी घटनाएँ दिखायी पड़ती हैं।

क्या कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश के बाद फिर नीचे उतर सकती है?

कुण्डलिनी ब्रह्मरन्ध्र में प्रवेश के बाद फिर नीचे नहीं उतर सकती और ऐसे समय में उसकी पूँछ मूलाधार से छूट जाती है। उस समय अपानवायु निकल जाती है और प्राणवायु को नीचे शरीर के अन्दर नहीं खींच पाती। ऐसे विलक्षण समय में शरीर से दो तत्त्व गिर जाते हैं और सूक्ष्म शरीर कुण्डलिनी सहित शीर्ष में तीन में तीन तत्त्व द्वार बने शरीर में रह जाता है।

आत्मसाक्षात्कार कैसे?

जब कुण्डलिनी सहस्रार के ब्रह्मरन्ध्र में

प्रवेश करती है। तब वह सहस्रार से निरन्तर गिरते हुए अमृत का पान करने लगती है। वह अपनी पूंछ को मूलाधार चक्र से खींचने लगती है। इस समय साधक को कुछ कष्ट भी अनुभव हो सकता है। कुण्डलिनी कभी-कभी एक ही झटके में और कभी-कभी धीरे-धीरे अपनी पूंछ मूलाधार से खींच लेती है। अब वह सर्पिणी सिकुड़कर छोटी-सी हो जाती है और सहस्रार से चिपक जाती है। ऐसे समय में मूलाधार से उसका सम्पर्क छूट जाता है। उसकी पूंछ के दो तत्व पृथ्वी और जल विलीन हो जाते हैं पृथ्वी तत्व विलीन होने के कारण कुछ साधक पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण का उल्लंघन कर सकते हैं और उनका शरीर पृथ्वी से ऊपर उठ सकता है। यदि इस स्थिति में साधना आगे जारी रखी जाय तो आकाश में शरीर के उड़ने की क्षमता भी हो सकती है।

अब शरीर की तत्व की संरचना में तेजी से परिवर्तन होने लगता है। शरीर में सूक्ष्म शक्तियां जागृत हो जाती हैं। शरीर की स्थूलता दिनोंदिन घटने लगती है। शरीर हर समय ऊर्जा से भरा रहता है आनन्द पल-पल बढ़ता ही जाता है। मन सदैव प्रफुल्लित रहता है।

परमात्मा की ओर सहज ही निरन्तर ध्यान आकृष्ट रहता है। विचार शून्य हो जाते हैं। कभी कभी-कभी क्षणिक समाधि लगती है। तन्द्रा जैसी स्थिति कभी कभी हो जाती है और साधक आनन्द में लीन हो जाता है। अनेक सूक्ष्म लोकों के दृश्य अन्तर्दृष्टि में दिखायी देने लगते हैं। मन शान्त और विचार शून्य हो जाता है तथा ब्रह्माण्ड का प्रत्येक दृश्य प्रत्यक्ष हो जाता है और स्वयं को जानकर इतने बड़े ब्रह्माण्ड में अपने कुछ न होने का या सब में अनुस्यूत होने का बोध होने लगता है। अहंकार अपने को जानते ही विलीन होने लगता है। फिर सर्वज्ञ सर्वव्यापक परमात्मा में प्रवेश प्रारम्भ होता है। यहां से अब महाशून्य की यात्रा प्रारम्भ होती है और साधक निर्वाण की ओर चल पड़ता है। ❀

❀ वेदान्त और नीति ❀

❀ इस प्रकार वेदान्त इस बात का उपदेश देता है कि 'अपनी या दूसरों की भी कभी हिंसा न करनी चाहिये। ईश्वर से कुछ भी भिन्न नहीं है।' वस्तुतः वेदान्त के अधिकारी तथा अनुबन्ध-चतुष्ट आदि पारिभाषिक शब्दों में नीति और उपदेश के सभी तत्त्व आ जाते हैं। धर्म के समस्त लक्षण भी वेदान्त में अन्तर्भुक्त हैं। कुछ लोगों का यह विचार है कि वेदान्त संन्यास धर्म की ओर प्रवृत्त करता है। पर सच बात यह कि योगवासिष्ठादि वेदान्त ग्रन्थ हमें जीवन में कर्मठता का भी पाठ पढ़ाते हैं और कर्त्तव्य-पथ की ओर भी अग्रसर करते हैं।

भगवान कपिल का माता को योगोपदेश

श्री वासलाल ब्रह्मचारी

महर्षि कपिल सांख्य दर्शन के प्रणेता हैं अपनी माता देवहूति को उन्होंने भक्ति एवं योग का उपदेश दिया, उसी का सार इस लेख में प्रस्तुत है :—

भगवान कपिल अपनी माता को उपदेश देते हुये कहते हैं।

माता जी ! अध्यात्म योग ही मनुष्य के आत्यन्तिक कल्याण का मुख्य साधन है जहां सुख और दुःख की सर्वथा निवृत्ति होजाती है।

योग आध्यात्मिकः पुंसां
मतो निःश्रेयसाय मे ।
अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुःखस्य
च सुखस्य च ।

जीव के बन्धन का और मोक्ष का कारण मन ही है। विषयों में आसक्त होने पर वह बन्धन का हेतु होता है, परमात्मा में अनुरक्त होने पर वह ही मोक्ष का कारण बन जाता है।

गुणेषु सक्तं बन्धाय
रतं वा पुंसि मुक्तये ।

मैं, मेरापन तथा काम क्रोधादि से मुक्त होकर वैराग्य और भक्ति से युक्त हृदय से आत्मा को प्रकृति से परे, स्वयं प्रकाश, अखण्ड एवं उदासीन देखता है। योगियों के लिए भगवत् प्राप्ति के निमित्त सर्वात्मा श्री हरि के प्रति की हुई भक्ति के समान और कोई मंगलमय मार्ग नहीं है विवेकी-जन संग (आसक्ति) को ही आत्मा का अच्छेद्य बन्धन मानते हैं। किन्तु वही संग जब महापुरुषों से साथ हो जाता है तो मोक्ष का द्वार खुल जाता है।

प्रसङ्ग मजरं पाशमात्मनः
कवयो विदुः ।
स एव साधुषु कृतो
मोक्षद्वारमपावृतम् ।

जो व्यक्ति दयाशील, सहनशील तथा 'सर्व भूतहिते रता' हैं। मेरे लिए जिन्होंने सब से सम्बन्ध त्याग दिया है, मेरे परायण हो कर मेरी पवित्र कथाओं का श्रवण कीर्तन करते हैं उन्हें तरह-तरह के ताप (त्रयताप) नहीं सताते।

इसलिए देवी ! महापुरुषों का संग ही इच्छा करने के योग्य है, क्योंकि वे आसक्ति जनक सभी दोषों को हर लेने वाले हैं। इस प्रकार मनोनिग्रह का यत्न करता हुआ लौकिक एवं पारलौकिक सुखों से वैराग्य हो जाने पर

मनुष्य सावधानता पूर्वक शब्दादि विषयों का त्याग कर, वैराग्य युक्त ज्ञान एवं योग से मेरे प्रति की हुई सुदृढ़ भक्ति से मुझ परमात्मा को इस देह में ही पा जाता है।

माता जी ! जो लोग इहलोक, परलोक में साथ जाने वाली वासनामय लिङ्ग देह (सूक्ष्म-शरीर) को तथा शरीर सम्बन्ध रखने वाले धन, पशु, गृह आदि हैं, उन्हें त्यागकर अनन्य भक्ति से सब प्रकार से मेरा भजन करते हैं उन्हें मैं संसार-सागर से पार कर देता हूँ। मैं साक्षात् आत्मा हूँ। प्रकृति और पुरुष का भी प्रभु हूँ, तथा समस्त प्राणियों की आत्मा हूँ। मेरे भय से वायु चलती है, सूर्य तपता है, इन्द्र वर्षा करता है, अग्नि जलती है।

योगीजन ज्ञान वैराग्य युक्त मन से योग के द्वारा शान्ति प्राप्त करने के लिए मेरे निर्भय चरणों का आश्रय ग्रहण करते हैं।

माता जी ! आत्म-दर्शन रूप ज्ञान ही पुरुष के मोक्ष का कारण है और इसी ज्ञान से उस को अहंकार रूप हृदय ग्रन्थि (अविद्याग्रन्थि) का भेदन करने वाला है। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि कुपथगामी (विषय चिन्तन) में लगे हुए चित्त को तीव्र भक्ति योग एवं वैराग्य के द्वारा धीरे-धीरे वश में करे।

देवी ! अब मैं अष्टाङ्ग योग की विधि का वर्णन करता हूँ। यमादि योग साधनों के द्वारा श्रद्धा पूर्वक अभ्यास द्वारा चित्त को बार-बार प्रकाश करते हुए, मुझमें रमकर भाव रखना, समस्त प्राणी में समभाव, आसक्ति का त्याग, मौन व्रत, प्रारब्धानुसार जो मिल जाये उसी में सन्तुष्ट रहता है परिमित भोजन करता है, एकान्त रहता है, सब का मित्र है दयालु तथा धैर्यवान है, प्रकृति एवं पुरुष के वास्तविक स्वरूप को अनुभव करके, तत्व ज्ञान के द्वारा वे देहादि का अभिनिवेश नहीं करता है। परमात्मा के अतिरिक्त और कोई वस्तु नहीं देखता है। वह आत्मदर्शी मुनि नेत्रों से सूर्य को देखने के समान अपने शुद्ध अन्तःकरण द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार कर शुद्ध ब्रह्म को पा जाता है।

भगवान कपिल आगे कहते हैं—शास्त्र विरुद्ध आचरण का त्याग, आत्म ज्ञानियों के चरणों की सेवा करना, संसार-बन्धन से छुड़ाने वाले धर्मों में प्रेम करना, पवित्र एवं परिमित भोजन करना, एकान्त व निर्जन स्थान में रहना, यम-नियमों का पूरा पालन करते हुए स्थिर पूर्वक बैठना, धीरे-धीरे प्राणायाम द्वारा श्वास को जीतना इन्द्रियों को मन के द्वारा विषयों से हटाकर हृदय में ले जाना। मूला-धार आदि किसी केन्द्र में मन सहित प्राण को स्थिर करना। जिस प्रकार वायु और अग्नि से तपाया हुआ सोना अपने मल को त्याग देता है उसी प्रकार जो योगी प्राणवायु को जीत लेता है उसका मन बहुत शीघ्र शुद्ध हो जाता है। अतः योगी को चाहिये कि प्राणायाम से

वायु, रेचकादि द्वारा दोषों को, धारणा से पापों को प्रत्याहार से विषयों के सम्बन्ध को और ध्यान से भगवद् विमुख करने वाले राग-द्वेषादि दुर्गुणों को दूर करे।

प्राणायाम दहेद्दोषान्,
धारणाभिश्च किल्बिषान्
प्रत्याहारेण संसर्गान्,
ध्यानेनानीश्वरान् गुणान् ।

तत्पश्चात् भगवान के रूप का एकाग्र चित्त होकर ध्यान करना चाहिये।

माता जी! अब मैं तुम्हें अपने तीन प्रकार के भक्तों को बतलाता हूँ।

जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष, हृदय में हिंसा दम्भ तथा मात्सर्य का भाव रखकर मुझ से प्रेम करता है वह मेरा तामस भक्त है। जो पुरुष विषय यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में मेरा भेदभाव से पूजन करता है वह मेरा राजस भक्त है। पूजन करना कर्त्तव्य है इस बुद्धि से जो पूजन करता है वह मेरा सात्त्विक भक्त है। माता जी! मैं सभी जीवों में आत्मा रूप से स्थित हूँ। इसलिए जो लोग मुझ सर्वभूत स्थित परमात्मा का अनादर करके केवल प्रतिमा से ही मेरा पूजन करते हैं उनकी वह पूजा स्वांगमात्र है। जो भेददर्शी और अभिमानी पुरुष दूसरे जीवों के साथ वैर बांधता है वह शरीर में विद्यमान मुझ आत्मा से ही द्वेष करता है। उसके मन को कभी शान्ति नहीं मिल सकती। जो व्यक्ति दूसरे का अपमान करता है वह बहुत बढ़िया-बढ़िया सामग्री से भी मेरा पूजन करे तो भी मैं उससे प्रसन्न नहीं होता हूँ। मनुष्य जब तक सम्पूर्ण प्राणी में स्थित मुझ परमात्मा का अनुभव न हो जाये तब तक वह मुझ ईश्वर की प्रतिमादि में ही पूजा करे।

माता जी! पाषाणादि अचेतनों की अपेक्षा वृक्षादि श्रेष्ठ हैं उन से भी मन वाले प्राणी उत्तम हैं तथा उन से भी इन्द्रियों की वृत्ति से युक्त प्राणी श्रेष्ठ हैं। उनमें स्पर्श का अनुभव करने वाले, तथा उन से भी रस का अनुभव करने वाले मत्स्यादि श्रेष्ठ हैं। मत्स्यादि से गन्ध का अनुभव करने वाले तथा उन से भी शब्द को ग्रहण करने वाले श्रेष्ठ हैं। उन से ऊपर नीचे दोनों ओर दांत वाले श्रेष्ठ हैं। बिना पैर वाले जीव से अनेक पैर वाले, तथा उनसे भी चार-चरण वाले, तथा चार चरण वालों से भी दो चरण वाले मनुष्य श्रेष्ठ हैं। उन में भी अपने सम्पूर्ण कर्म, फल तथा अपने शरीर को भी मुझ में अर्पण करके भेदभाव छोड़कर मेरी उपासना करते हैं वे श्रेष्ठ हैं। माता जी! इस प्रकार मैंने योग एवं भक्ति का उपदेश किया है। इन में से एक का भी साधन कर लेने पर जीव पूर्ण सच्चिदानन्द परमात्मा को अवश्य ही पा जाता है।

—×—

समर्थ योगी श्री रामदास

● श्री केशव जी उपाध्याय, वाराणसी

अध्यात्मवादी एवं शक्ति सम्पन्न सिद्ध पुरुषों की कृपा भी अलौकिक एवं निराली होती है। असहाय एवं दुःखी जनता का, हर समय और हर परिस्थिति में, कल्याण करने के लिए ही, शायद ऐसे पुरुष इस धराधाम पर आते हैं। कल्याण भी ऐसा-वैसा नहीं, विचित्र प्रकार का! आप सोच रही होंगी, क्या पारस पत्थर जैसा, जी नहीं, उससे भी आगे! तो फिर किस प्रकार का? क्या बतलाऊँ! बतलाने में पूर्ण वाणी असमर्थ हो जाती है। उसकी कोई दूसरी उपमा भी नहीं है। पारस पत्थर से लोहे का जो भी टुकड़ा स्पर्श कराया जाता है, वह सोना बन जाता है। परन्तु योगी पुरुष जिस (प्राणीमात्र) को ठीक प्रकार से स्पर्श कर देते हैं, वह योगी बनने लगता है, और कभी-कभी तुरन्त ही बन जाता है। पारस पत्थर के पास लोहा ले जाना पड़ता है, परन्तु योगी की जब कृपा बरसती होती है, आप स्वयं अधमाधम के पास पहुँच जाते हैं। ऐसी है विचित्र कृपा-कहानियाँ हमारे योगी महापुरुषों की। भारतीय इतिहास में शिवाजी का नाम बड़े ही आदर एवं सत्कार के साथ लिया जाता है। आखिर, शिवाजी को महान बनाने का श्रेय किसको है? इस महान श्रेय के अधिकारी हैं, महान आध्यात्मिक पुरुष समर्थ योगी श्री रामदास जी। शिवाजी समर्थ योगी रामदास की शरण में कब और कैसे आये, इस के सम्बन्ध में किम्वदन्ती इस प्रकार की है कि एक दिन दक्षिण में मराठा राज्य की स्थापना का कार्य शुरू कर के, वे रायगढ़ से कहीं अन्यत्र जा रहे थे, रास्ते में अनायास एक कीर्तन में सम्मिलित हो गये। कीर्तन की समाप्ति के बाद आचार्य जी ने जो प्रवचन दिया उसका सारांश यही था कि बिना गुरु-दीक्षा लिये मोक्ष नहीं हो सकता। यह बात शिवाजी के मन में घर कर गयी। वे तभी से अच्छे गुरुदेव की तलाश करने लगे। बहुत दिनों बाद आप को योगी रामदास जी के सम्बन्ध में जानकारी मिली और आप ने निर्णय किया कि रामदास जी को ही अपना गुरु बनाया जाय। आप ने कई बार श्री रामदास जी के दर्शन करने का प्रयत्न किया परन्तु प्रत्येक बार असफल रहे। अन्त में आपने स्वामी जी को बुलाने के लिए अपने एक कर्मचारी को भेजा। स्वामी जी ने शिवाजी के

कर्मचारी को खाली हाथ लौटा दिया और अपने एक शिष्य द्वारा शिवाजी के पास एक पत्र भिजवा दिया, जिसमें अनेक प्रकार के उपदेश दिये गये थे। पत्र में यह भी लिखा था कि इस पत्र प्राप्ति के बाद, तुम विवेक से काम लेना और मैं आशा करता हूं कि तुम जल्दी ही हमसे मिलने में सफल हो जाओगे। और यह तो रही शिवाजी की बात जिसका वर्णन बाद में किया जायेगा, इस समय यहां समर्थ योगी रामदास जी की जीवन-गाथा और उसके बाद उनके यौगिक प्रसंगों का वर्णन करने का प्रयत्न किया जा रहा है। आशा है कि पाठकगण लेख की त्रुटियों को क्षमा करने की कृपा करेंगे।

बात सन् १६०८ ईस्वी की है। श्रीसूर्याजी पन्त और राणूबाई के सन्तान के रूप में एक बालक का जन्म हुआ। दक्षिण राज्य के एक छोटे से गांव में और मां-बाप ने प्यार से बालक का नाम रखा 'नारायण'। कुछ बड़े होने, पर अपने बाल्यकाल में यह बालक बड़े ही नटखट और शरारती स्वभाव का बन गया। इधर-उधर घूमना, नदियों को दिन-दिन भर तैर कर पार करना, पेड़ों पर चढ़ना और अपने से बड़े आदमियों और बालकों से संसार और आत्मा के सम्बन्ध में चर्चा करना यही इनका दैनिक कार्यक्रम बन गया था। इनके बड़े भाई अपने क्षेत्र के प्रतिष्ठित प्राप्त पुरुष थे और गुरु-मंत्र प्रदान कर शिष्य भी बनाया करते थे। नारायण ने बड़े होने पर अपने भाई साहब से प्रार्थना कि, 'भाई साहब, आप मुझे भी गुरुमंत्र दीजिए।' उनके बड़े भाईसाहब ने कहा, 'नारायण! तुम्हारी अवस्था अभी छोटी है, अतः तुम्हें मन्त्र नहीं दिया जा सकता।' फिर भी नारायण अपने बड़े भाई से गुरुमन्त्र के लिये जिद करने लगे परन्तु उनके भाईसाहब ने उन्हें गुरुमन्त्र नहीं दिया। नारायण को यह बात अच्छी न लगी। उसके बाद नारायण घर से भागकर एक मन्दिर में पहुंचकर भगवान की प्रार्थना करने लगे। प्रार्थना करते-करते वे बिल्कुल ध्यान मग्न हो गये। उस समय उस मन्दिर में उन्हें शब्द आकाशवाणी सुनायी दी, 'नारायण! सांसारिक सुखों को छोड़ो, संसार का कल्याण करो।' इधर यह हो रहा था और उधर घर के लोग नारायण को खोज रहे थे कि हमारा नारायण कहां चला गया? उनके भाई इन्हें खोजने निकले तो वह मन्दिर में प्रार्थना करते हुए मिले। इनके भाई इनको लेकर घर आये। घर लौटने पर इनका मन वैराग्य के भावों से पूर्ण रहने लगा। यह अपनी माता राणूबाई का बड़ा ही आदर और सम्मान किया करते थे तथा उन की आज्ञाओं का अक्षरशः पालन करते थे। उन दिनों छोटी अवस्था में ही विवाह होजाया करते थे। उनकी माता को इच्छा हुई कि नारायण

का भी विवाह कर दिया जावे। आगे-पीछे, इन के विवाह की बात चली। नारायण नाराज़ हो जाया करते थे। एक बार जब इनके विवाह की बात चली, नारायण घर से भाग गये एवं गाँव से बाहर जाकर एक पेड़ पर चढ़ कर बैठ गये। कहते हैं कि वे कुछ टुकड़े लेकर पेड़ पर चढ़े थे। जो भी इन्हें समझाने जाता यह पत्थर मार मार भगा देते थे। अन्त में उनके भाई गये जो समझाकर इन्हें घर ले आये। इसी प्रकार एक बार जब इनके विवाह की बात चली तो नारायण गाँव से बाहर एक नदी किनारे स्थित बरगद के पेड़ पर चढ़ गये। लोगों ने खोजना आरम्भ किया, बहुत खोजने पर आप नदी के किनारे बरगद-वृक्ष पर मिले। लोगों ने समझाना आरम्भ किया परन्तु आप ने किसी की बात न सुनी। जब लोगों ने तंग करना आरम्भ किया तो आप बरगद-वृक्ष से नदी के गहरे जल में कूदकर गायब हो गये। कूदने पर आप का सिर किसी वस्तु से टकराकर फूट गया और खून गिरने लगा। बाद में किसी प्रकार लोगों ने आप को नदी से बाहर निकाला और लेकर घर आये। यह बात सुनकर इनकी माता को बड़ा ही कष्ट हुआ और उन्होंने नारायण के बड़े भाई से कहा कि इसके साथ हठ करना ठीक नहीं है। एकान्त में एक दिन अपने पुत्र की पीठ सहलाते हुये माता ने कहा, 'नारायण ! क्या तुम मेरी एक बात नहीं मानोगे ?' नारायण ने उत्तर दिया,' माता जी। आप ने यह क्या कहा ? आप की बात भला न मानूँगा ? माता तो साक्षात् देवी के समान है।' यह सुनते ही इनकी माता जी ने तुरन्त कहा, 'तब अब तुम विवाह करलो।' वे बोले, 'आपकी आज्ञा।' इसके पश्चात् इनके विवाह की तिथि निश्चित हो गयी। और उसके बाद विवाह की पूरी सामग्री तैयार हो गयी। निश्चित तिथि पर पूरी बरात के साथ नारायण वधू के घर गये। विवाह का कार्य आरम्भ हुआ। विवाह का बहुत सा कार्य हो गया था कि नारायण विवाह मंडप से उठकर भाग गये। इनका पीछा किया गया परन्तु नारायण का कहीं पता न चल सका। नारायण विवाह मंडप से भागकर तीन दिन तक एक पीपल-वृक्ष के खोखले में छिपे रहे। चौथे दिन वे पैदल यात्रा कर नासिक पहुँचे। इस समय उनकी अवस्था मात्र तेरह साल की थी। अपने गाँव में वे जो कुछ पढ़ सके थे, वही उनकी शिक्षा थी। नासिक में वे एक गुफा में रहते थे। नासिक में प्रवास के समय नित्य प्रातः गोदावरी में स्नान करते और दोपहर तक नदी-जल में खड़े हो कर मन्त्र जप करते थे। किसी से बात नहीं करते थे। इनकी साधना दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती चली गयी। लगभग बारह वर्ष की कठिन तपस्या के बाद यही बालक

नारायण अपने पच्चीस वर्ष की अवस्था पूरी करते-करते समर्थ योगी, समर्थ गुरु नारायण के नाम से विख्यात हुये। इसके पश्चात् आप ने भारत के सभी तीर्थों का भ्रमण किया। इसी भ्रमण-काल के दौरान यह अपनी माता के दर्शनार्थ अपने घर गये। उस समय आप की माता जी के आंख से बिल्कुल ही दिखायी नहीं दे रहा था। अपनी माँ के पास जाकर आप ने आवाज लगाई तो श्रीमती राणुबाई बोली, 'क्या नारायण बोल रहा है?' इतना सुनते ही आप अपनी माता जी के चरणों पर गिर पड़े। कहा जाता है कि उसी समय से इनकी माता को आंखों से पुनः दिखायी देने लगा। इनकी हालत और अपरमित शक्ति देखकर इनकी माता जी ने कहा, 'नारायण! क्या तू भूत विद्या सीखकर आता है?' आप ने उत्तर दिया, 'नहीं माँ जी, मेरा भूत तो परमात्मा ही है। उसे ही परमेश्वर और ईश्वर आदि नामों से सम्बोधित किया जाता है।' अपनी माँ के दर्शन के पश्चात् नारायण पुनः तीर्थाटन करने निकल पड़े। अपने इस भ्रमण काल के दौरान आप ने नासिक की एक गुफा में कुछ अधिक समय तक निवास किया। इस समय की एक विलक्षण घटना का वर्णन इस प्रकार से है :—

आप की गुफा के पास के एक गांव में एक पटवारी निवास करता था। जिसका शरीर क्षयरोग के कारण बिल्कुल ही क्षीण हो गया था। एक दिन उसकी श्वांस बन्द हो गयी और उस गांव के लोग उसे मरा हुआ जानकर, फूंकने के लिये चल दिये। पीछे-पीछे उसकी स्त्री भी सती होने के लिये साथ चल रही थी। रास्ते में बाबा की गुफा थी और आप गुफा के बाहर ही बैठे थे। स्त्री ने सोचा कि सती होने के पूर्व बाबा जी के चरण-स्पर्श कर लिया जाय। उसने जा करके बाबा जी के युगल चरणों में साष्टांग प्रणाम किया। बाबा जी ने उत्तर दिया, 'सौभाग्यवती! तुम्हें आठ पुत्र हों।' उस स्त्री को बड़ा आश्चर्य हुआ कि सिद्ध पुरुष होकर यह कैसा आशीर्वाद दे रहे हैं, और उसने अपना सारा कष्ट बाबा जी के चरणों में निवेदन किया। उसके पश्चात् वह बाबा जी का पैर पकड़ कर विविध प्रकार से विलाप करने लगी। उस बेचारी को शायद यह पता नहीं था कि :—

सन्त वचन पलटे नहीं,
पलट जाय ब्रह्माण्ड।

सन्त और योगी पुरुषों की बात कभी भी असत्य नहीं होती। यदि विशेष परिस्थिति में ब्रह्माण्ड को पलटा जाना पड़े तो वह पलट सकता है, परन्तु किसी भी परिस्थिति में सन्त का वचन पलटा नहीं जा सकता, अर्थात् उसे अपने समय पर अक्षरशः सत्य होना ही है। उसका करुणापूर्ण विलाप सुनकर बाबा जी ने

कहा, 'जाकर देख, तेरा पति मरा नहीं है।' उसने जाकर देखा तो उसका पति जीवित पा गया था। उस स्त्री को महान प्रसन्नता हुई और फिर दोनों ने पुत्र सहित बाबा जी को प्रणाम कर अपने घर की राह ली। थोड़े दिन बाद उसके पति का स्वास्थ्य बिल्कुल ठीक हो गया। समयान्तर में उसे प्रथम पुत्र की प्राप्ति हुयी, और अन्त तक बाबा जी की दासी पूर्ण समर्पण भाव समर्पित हो गयी।

लेख के पूर्वार्द्ध में समर्थ योगी रामदास जी और शिवाजी का आपसी सम्बन्ध कैसे बना, इस विषय पर थोड़ा प्रकाश डाला गया है। योगी रामदास जी का उपदेशात्मक पत्र पाकर शिवाजी ने कुछ समय बाद उनके दर्शन की योजना बनाई। एक माह के अन्दर ही आपको ऐसा सौभाग्य प्राप्त हो गया। योगी रामदास जी ने आशीर्वाद के रूप में उन्हें अनेकानेक उपदेश दिये। उपदेश सुनने के बाद उनकी घर छोड़ने की इच्छा और भावना बिल्कुल समाप्त हो गई और उन्होंने प्रार्थना की कि, "महाराज! अब सर्वदा आपके पास ही रहना चाहता हूँ" बाबा जी ने कहा, 'तुम्हारा धर्म राज्य स्थापन करना तथा अधर्म का नाश करना है। इसी से राजा को मोक्ष प्राप्त होता है। इसलिए तुम राजाओं का धर्म पालन करो। देश को दासता से मुक्त करना ही तुम्हारा धर्म है।" शिवाजी गुरु-आज्ञा से फिर वापस जाकर राज्य कार्य करने लगे। धीरे-धीरे शिवाजी और समर्थ गुरु रामदास का सम्बन्ध घनिष्ठ होता गया। शिवाजी अपने प्रत्येक कार्य करने से पूर्व अपने गुरुदेव की आज्ञा अवश्य प्राप्त कर लिया करते थे। शिवाजी द्वारा आह्वान करने पर स्वामी जी परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से शिवाजी के सामने प्रकट हो जाते और जब कभी शिवाजी के मन में कोई दुर्भावना प्रकट होती, आप उसे तुरन्त दूर कर देते थे और अनेक प्रकार के उपदेश देकर अन्तर्धान हो जाते।

प्रसंग उस समय का है जब स्वामी रामदास जी भिक्षा मांगते-मांगते शिवाजी के राज महल तक पहुँच गये। शिवाजी ने अचानक अपने गुरुदेव को अपने राजमहल में देखा, वे आनन्द विभोर हो गये। शिवाजी ने सोचा कि भिक्षा के नाम पर गुरुदेव को क्या देना चाहिए। कुछ मिनट सोचने के बाद शिवाजी ने अपने मन्त्री जी को बुलाया और उससे एक सादे कागज पर लिखवाया, "सर्व समर्थ गुरुदेव के श्रीचरणों में शिवा का सम्पूर्ण राज्य सादर अर्पित किया जाता है।" इसके पश्चात उसपर राज्य की मुहर लगायी गयी और शिवाजी ने उस कागज पर हस्ताक्षर करके स्वामीजी की झोली में डाल दिया। स्वामी ने कहा, 'शिवा एक पाव चावल डालते तो पेट भरता, कागज से क्या मिलेगा।" अब कागज निकालकर

रामदास जी ने देखा तो बोले, "राज्य तो तुम ने मुझे दे दिया, अब तुम क्या करोगे?" शिवाजी ने उत्तर दिया, "अब मैं आपके चरणों की सेवा करूँगा।" इसके पश्चात् भोजन के बाद जब स्वामी जी विश्राम कर रहे थे तो उन्होंने शिवाजी को समझाया, "शिवा! जो वस्तु जिसके लिए बनी है, उसी को अच्छी लगती है, यह लो अपना समर्पण पत्र यह राज्य तुम्हीं को लौटा देता हूँ।" गुरु के इस प्रकार समझाने पर शिवा जी ने राज्य का कार्य प्रधानमन्त्री के रूप में किया।

आपके राज्यकाल में ही श्री सदाशिव शास्त्री नामक एक विद्वान का प्रसंग मिलता है, इन सदाशिव शास्त्री ने काशी आदि अनेक स्थानों पर धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया था। इस विद्वान महाशय के अन्दर अहम् (घमंड) की मात्रा भी घर कर गई थी वे अपने कमर में छुरी बांधे रहते थे, और हाथ में मशाल लेकर चलते थे। देश-विदेश में घूम घूमकर शास्त्रार्थ किया करते थे। छुरी इसलिए धारण किये रहते थे कि जो शास्त्रार्थ में मुझसे हार जायगा, उसकी जीभ काट लूँगा और यदि मैं हार जाऊँगा तो निज मशाल अपने मुख से बुझा दूँगा। हजारों विजय पत्र अर्जित करके शास्त्री सदाशिव, शिवाजी के दरबार में पहुँचे। श्री रामभट्ट, शिवाजी के दरबार के मुख्य विद्वान उस समय वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने सोचा कि यदि मुझ से शास्त्रार्थ किया तो मैं हार जाऊँगा। अतः शिवाजी ने जब रामभट्ट से शास्त्रार्थ की बात चलाई तो भट्ट जी ने कहा कि स्वामी रामदास हम लोगों के लिये ईश्वर तुल्य हैं, अतः उनके राज्य में विद्यमान रहते वे ही इन शास्त्री जी से शास्त्रार्थ करेंगे। सर्वसम्मत से इस निर्णय की सूचना शिवाजी अपने गुरुदेव भगवान श्री रामदास जी को लेखा दे न सके। तीसरे ही दिन श्री सदाशिव शास्त्री शास्त्रार्थ करने स्वामी रामदास जी के आश्रम पर आ गये, यहाँ शिवाजी एवं शिवाजी के सहायक भी शास्त्रार्थ का आनन्द लेने अपने गुरु के पास पहुँच गये थे। अब शास्त्री जी ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की चर्चा की तो स्वामी जी ने कहा, 'शास्त्री जी, मैंने शास्त्रों का अध्ययन नहीं किया है। मैं विद्वान नहीं हूँ। केवल परमात्मा का भजन किया करता हूँ।' जब शास्त्री जी ने शास्त्रार्थ करने की जिद पकड़ ली तो स्वामी जी ने शिवाजी के एक अपढ़ सहायक से शास्त्रार्थ करा दिया। श्री सदाशिव शास्त्री हार गये। उन्होंने मशाल बुझा दी और छोटी चाकू से अपनी जीभ काटने को तैयार हुए स्वामीजी ने ऐसा करने से उन्हें रोक दिया। उन्होंने रामदास जी से क्षमा याचना की एवं उनका शिष्य बन कर योगाभ्यास करना आरम्भ किया।

प्रसंग उस समय का है, जब समर्थ योगी

रामदास, शिवाजी और अपनी शिष्य मंडली के साथ भ्रमणार्थ कहीं जा रहे थे। रास्ते में एक सुन्दर सा खेत पड़ा और स्वामी जी के शिष्यों ने तोड़-तोड़ कर भुट्टे खाना आरम्भ कर दिया। खेत वाले ने देखा। उसने सोचा कि यह स्वामी ही इस सब का मालिक है। अतः उसने स्वामीजी को अपशब्द कहे। सभी शिष्य खेत वाले को मारने को दौड़े। स्वामी जी ने सब को मना किया। यह खेत शिवा जी की आज्ञा से ही किसान को केवल लगान पर दिया गया था परन्तु स्वामी जी ने शिवाजी को आदेश दिया कि यह खेत इस किसान को सर्वदा के लिये दे दिया जाय। यह था अपकार के बदले उपकार का प्रत्यक्ष उदाहरण।

इसके पश्चात् स्वामी जी ने अपना भ्रमण का कार्य समाप्त करके शिवाजी महाराज के द्वारा स्थापित आश्रम पर निवास करना आरम्भ किया। आश्रम पर आध्यात्मिक साधना करने वाले प्रत्येक साधक के लिये समुचित व्यवस्था थी। कुछ समय बाद आलसी और कामचोर लोग भी आध्यात्मिक साधना के नाम पर इनके आश्रम पर निवास करने लगे। स्वामी जी ने असली-नकली साधकों की परीक्षा लेने का विचार किया। एक दिन स्वामी श्री रामदास जी कराहने और चिल्लाने लगे। इस पर सभी शिष्य स्वामी जी के पास एकत्र हो गये और पूछने लगे, स्वामी जी क्या बात है? स्वामी ने कहा, 'तुम लोग जानो। चल ही नहीं सकता, पैर में फोड़ा है और वह पक गया है। इसमें विष उत्पन्न हो गया है। बस सिर्फ एक ही उपाय है। यदि कोई इसे अपने मुख से चूस ले तो मेरा दर्द समाप्त हो जायेगा। परन्तु इसे चूसने वाला व्यक्ति तत्काल ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। ऐसी स्थिति में दूसरे की जान लेने की अपेक्षा मैं तो स्वयं मर जाना उचित समझता हूँ।' सभी शिष्यों ने बात सुनी, पर कोई टस से मस न हुआ। केवल मात्र एक शिष्य जिसका नाम कल्याण था उसने स्वामी जी के फोड़े का विष चूसना स्वीकार कर लिया। स्वामीजी ने उसको अनेक प्रकार से रोकने का प्रयत्न किया, परन्तु वह अपने निश्चय पर अडिग रहा। अन्त में स्वामी जी ने फोड़े की पट्टी थोड़ी सी खोल दी और शिष्य कल्याण ने उस पर अपना मुँह लगाकर विष चूसना आरम्भ किया। कल्याण को मालूम हो रहा था कि फोड़े का विष मीठा-मीठा रस है। उसने आश्चर्यचकित होकर यह बात स्वामी जी से निवेदन भी की। उसकी बात सुनकर स्वामीजी मुस्करा दिये एवं पूरी पट्टी उन्होंने खोल दी। कल्याण ने देखा कि स्वामी जी ने एक बड़ा सा पका आम बांधकर, शिष्यों की परीक्षा हेतु केवल फोड़े का बहाना मात्र ही किया था। स्वामी जी ने अपने इस प्रिय शिष्य

भगवान की गुरुभक्ति पर प्रसन्न होकर अनेक वरदान दिये जो आगे चलकर अक्षरशः सत्य हुये।

अब यहां स्वामी जी के मौलिक-जीवन से सम्बन्धित एक चमत्कारिक घटना का वर्णन किया जा रहा है जो इस प्रकार है :—

एक बार एक ब्राह्मण परदेश से कमाकर इकसठ सोने की मोहरें लिये घर जा रहा था। राह में स्वामी जी का दर्शन कर लेना भी उसने उचित समझा। उसने दर्शन किया एवं उसके पश्चात् उसने आश्रम पर ही थोड़ा आराम किया। इतने में साठ अन्य ब्राह्मण काशी से स्वामी जी के दर्शनार्थ आश्रम पर आये। स्वामी जी के आदेश से उनके शिष्यों ने ब्राह्मणों का भोजन तैयार कर उन्हें भोजन कराया। ब्राह्मणों के भोजनोपरान्त दक्षिणा की समस्या स्वामी जी के सामने आयी। स्वामी जी के पास उस समय कुछ भी नहीं था। स्वामी जी ने पूछा, 'क्या शिष्यों के पास ब्राह्मणों को दक्षिणा देने योग्य कुछ है?' किसी भी शिष्य के पास कुछ भी नहीं था। पहले वाले ब्राह्मण के पास इकसठ मोहरें थी, उसने सोचा स्वामी जी को उधार दे दूँ फिर चलते समय वापस ले लूँगा। इसी विचार से उसने सोने की इकसठ मोहरें स्वामी जी को प्रदान कर दी। स्वामी जी ने सभी ब्राह्मणों को एक-एक दक्षिणा में प्रदान कर दी एवं एक मोहर, मोहर वाले ब्राह्मण को भी दक्षिणा में प्रदान की। साठों दर्शनार्थी ब्राह्मण भोजनोपरान्त दक्षिणा प्राप्त कर अपने घरों को चले गये। वह ब्राह्मण जिसने स्वामी जी को मोहरें दी थी, इसी चिन्ता में पड़ा रहा कि मोहरें कब लौटायी जाती हैं। प्रतीक्षा करते-करते कई दिन बीत गये परन्तु स्वामी जी ने उससे कुछ भी न कहा। अब ब्राह्मण असमंजस में पड़ गया। पूरे तीन वर्ष की कमाई थी। ब्राह्मण ने जब जाने की बात चलाई तो स्वामी जी ने आदेश दे दिया कि, हाँ, अब जाओ। स्वयं थोड़ी दूर तक पहुँचाने भी गये परन्तु मोहरों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा।

खाली हाथ घर जाकर, घर पर क्या बहाना बनाऊंगा यही सोचते-सोचते ब्राह्मण अपने घर पहुँच गया। उसका मन बड़ा ही उदास एवं खिन्न था। उसकी इस अवस्था को देखकर उसके पिता ने उससे उदासी का कारण पूछा। उसने कहा, 'क्या बतलाऊँ पिताजी! तीन साल के बाद घर आया, वह भी खाली हाथ।' उसके पिता ने कहा 'बेटा, इसमें उदास होने की क्या बात है? रामदास सामान्य आदमी से तुमने जो एक सौ बाइस सोने की मुहरें भिजवायी हैं वे कम नहीं हैं।' अपने पिता के द्वारा यह बात सुन कर ब्राह्मणकुमार को महान आश्चर्य हुआ और (उनको) [illegible]

शक्ति का परिचय उसे कुछ अनुभव हुआ । इसके पश्चात् इस ब्राह्मण बालक ने स्वामीजी की सेवा में पुनः पहुँचकर गुरुदीक्षा ग्रहण की ।

समर्थ योगी रामदास ने देखा कि मेरे प्रिय शिष्य शिवा जी के अन्दर कुछ अभिमान पैदा हो गया है । अतः रामदासजी ने शिवाजी के मन के अन्दर से अहं का बीज निकाल कर फेंकने का निश्चय किया ।

शिवा जी एक बहुत बड़े किले का निर्माण कार्य करा रहे थे जिसमें कई सौ आदमी किला निर्माण कार्य में लगते थे । शिवा जी के मन में घमंड इस बात का पैदा होगया कि पृथ्वी पर यह अपने प्रकार का सबसे बड़ा किला होगा और इतनी जल्दी इतना बड़ा किला और दूसरा कोई राजा नहीं तैयार करा सकता । स्वामी जी, शिवाजी के अन्दर छिपा इस भाव को जानकर तुरन्त उस स्थान पर पहुँच गये जहाँ दुर्ग का निर्माण कार्य चल रहा था । एकाएक स्वामी जी को अपने निर्माणाधीन दुर्ग के पास उपस्थित देखकर शिवाजी को आश्चर्य हुआ । उन्होंने स्वामी जी से प्रार्थना की कि, 'स्वामी जी ! इस समय एकाएक इस स्थान पर आने का कष्ट करने का आप का कोई खास प्रयोजन तो नहीं है ।' स्वामी जी ने मुस्कराते हुए कहा कि तुम्हारे द्वारा निर्माणाधीन इस महान दुर्ग को देखने चला आया हूँ ।' शिवाजी अपने गुरुदेव की बात पर अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि सारी महत्ता आपकी दी हुई है । थोड़ी देर बाद एक बड़ा पत्थर दिखायी दिया । स्वामी जी ने आदेश दिया कि इस पत्थर के दो टुकड़े करा दो । आज्ञा पाते ही एक आदमी ने पत्थर को हथौड़े से तोड़ना आरम्भ किया । पत्थर टूटने पर उसके बीच में पोला (खाली स्थान) निकला तथा उसके भीतर से मेढ़क कूदते हुए बाहर चला गया । पत्थर के बीच से मेढ़क का निकलना देख शिवाजी को महान आश्चर्य हुआ । यह रहस्य जब उन्होंने स्वामीजी से जानना चाहा तो स्वामी जी ने व्यंग भरे शब्दों में कहा, शिवाजी ! यह तुम्हारी महिमा का परिणाम है ।'

अपने गुरुदेव के मुख से यह वाक्य सुनकर शिवाजी की पूरी बात समझ में आ गयी । अपनी गलती के लिये शिवाजी ने अपने गुरुदेव से बारम्बार क्षमा याचना की । उनके गुरुदेव ने आशीर्वाद दिया और समझाया, 'बेटा ! छोटे विचारों को अपने मन के अन्दर मत आने दो, यह घमंड पैदा करते हैं और घमंड, मानव का सबसे बड़ा शत्रु है । परम-पिता परमेश्वर सबसे बड़ा है और संसार का सभी कार्य उसी की कृपा से होता है । इस संसार में यश-अपयश उसी की कृपा से प्राप्त होता है । अतः इसे मैं ही कर रहा हूँ, ऐसा कभी मत सोचना ।

समर्थ गुरु रामदास प्रायः अपने पास आने वाले प्राणियों को समझाया करते थे कि संसार के सम्पूर्ण पदार्थों में एक ही परब्रह्म परमेश्वर व्याप्त है। परब्रह्म से ही सारे पदार्थों की उत्पत्ति हुई है। सारे जगत में व्याप्त परमेश्वर का अनुभव, समस्त सांसारिक कार्यों को करते हुए भी उसमें लिप्त न रहते हुए कुछ समय नियम से एकान्त चिन्तन करके परमेश्वर का साक्षात्कार कर सकता है। आज का मनुष्य अपने शरीर के अन्दर स्थित परमेश्वर को न जानने के कारण उद्देश्यहीन हो गया है। आत्मा का ज्ञान ही परमात्मा का ज्ञान है। यह साधारण ज्ञान नहीं है। भले ही बात यह है कि यह ज्ञान प्रत्येक प्राणी के अन्दर स्थित है, परन्तु उसका अनुभव उसे नहीं होता। इसका कारण मात्र इतना है कि उसका दर्शन कराने वाले, तत्वदर्शी शिक्षक की आवश्यकता है, क्योंकि इसकी चाबी उसी के पास रहती है। अतः प्रत्येक प्राणी को ऐसे तत्वदर्शी गुरुओं की शरण में जाकर दण्डवत् प्रणाम और सेवा द्वारा यह रहस्य जानने हेतु प्रार्थना करनी चाहिए। अब हम भी लेख को विश्राम देते हुए अपने प्रभु के युगल चरणों में साष्टांग प्रणाम के साथ बारम्बार प्रार्थना करते हैं कि यह रहस्य समझाने की कृपा की जाय।

❀ विचार-वीथी ❀

❀ बाल्यावस्था और कुछ नहीं, सिर्फ भूल है; प्रौढ़ावस्था और कुछ नहीं, सिर्फ संघर्ष है; और वृद्धावस्था अफसोस के सिवाय और कुछ भी नहीं— —डिज़रायेली

❀ जो आँखों से देखते हो उसके आधे पर ही विश्वास करो, और जो कानों से सुनते हो उसके किसी भी परिणाम पर विश्वास मत करो — —डिना मुलोक क्रेक

❀ गद्य लेखक पत्थर के अनगढ़ टुकड़ों से अपने यश का महल बनाते हैं और कवि संगमरमर के सुघड़ टुकड़ों से अपनी कीर्ति का मन्दिर निर्माण करता है— —बुल्वर लिटन

❀ लगातार सफलता हमें दुनिया की तस्वीर का एक पहलू दिखाती है। तस्वीर का दूसरा रूप हमें विफलताओं के कारण ही देख पाते हैं। —कोल्टन

❀ सच बात कोई भी आम आदमी बोल सकता है, लेकिन खूबसूरत ढंग से झूठ बोलना तो एक ज़हीन आदमी ही जान सकता है। —सैमुअल बटलर

रेल दुर्घटना में—

श्री गुरु कृपा का अदभुत चमत्कार

❀ श्री ध्रुवेन्द्रसिंह सिसोदिया

मैं कन्नरी ग्राम के सिसोदिया परिवार का सदस्य हूँ ध्रुवेन्द्र सिंह नाम से जाना जाता हूँ। वर्तमान में होशंगाबाद जिले में सिवनी विकास-खण्ड में सहायक विकास अधिकारी के पद पर कार्यरत हूँ। श्री गुरुदेव श्री महाराज जी की असीम कृपा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से अपने शिष्यों पर सदा बनी रहती है। एक उदाहरण लीजिए—

दिनांक ६-६-८४ को बम्बई आश्रम गुरुधाम के दर्शन करता हुआ मुझे अपने कन्नरा ग्राम लौट जाना रहा। क्योंकि श्री महाराजजी ऋषिकेश में गंगा-दशहरा के पर्व पर गये हुए थे, आश्रम पर नहीं थे। कन्नरी में कुछ दिन ठहरा क्योंकि वहाँ पर खेती इत्यादि के बेरे लिखने कराने थे।

ग्राम से वापस इटारसी पहुँचा जहाँ कि मेरा बड़ा लड़का वेटेनरी होस्पीटल में असिस्टेन्ट के पद पर कार्यरत है। अपने शेष सभी बच्चे इटारसीमें ही रहते हैं, मैं इटारसी से विकास-खण्ड अपनी ड्यूटी पर जाने को, 'झांसी एक्सप्रेस' पकड़ने को २६-६-८४ को प्रातः साढ़े पांच बजे इटारसी स्टेशन पर पहुँच गया।

क्या देखता हूँ कि गाड़ी प्लेट फार्म से छूट रही है और मुझे अभी पुल पार कर गाड़ी पकड़नी है, मैं भागकर दौड़ा और प्लेटफार्म पर पहुँचा तो गाड़ी चल दी, अन्तिम चार डिब्बे निकल गये थे, रफ्तार काफी तेज थी फिर भी गुरुदेव का स्मरण कर खिड़की का हत्था पकड़ा पर पैर पायदान पर न पड़ सके। क्योंकि गाड़ी तेज गति पकड़ चुकी थी, पैर प्लेट फार्म और गाड़ी के बीचमें घिसटने लगे।

मेरा लड़का अनिलकुमार सिंह सिसोदिया मुझे पहुँचाने आया था, मेरा हाथ पकड़ कर मुझे अपनी ओर खींचने का प्रयास करता रहा किन्तु यह जान कर कि मैं हाथ छोड़ते ही गाड़ी के नीचे चला जाऊँगा। मैंने हत्था नहीं छोड़ा।

परिणाम यह हुआ कि लड़के ने भी मुझे नहीं छोड़ा और वह भी साथ में घिसटने लगा। अन्त में उसके मुँह से चीख निकली और मैं बेहोश हो गया और हाथ से हत्था छूट गया और हम दोनों गाड़ीके नीचे गिर गये। शेष सभी डिब्बे उस ट्रेन के ऊपर से निकल गये हम लोग गाड़ी के जाने के बाद उठे, मैं बेहोश था बच्चे ने उठाकर प्लेटफार्म पर बैठाया। एक पुलिस

कम्पेटिबिल की मदद से बच्चे द्वारा मोटर-साइकिल पर घर लाया गया। मैं निरन्तर सारी रात बेहोशी में ही पड़ा रहा।

रात्रि के लगभग २ बजे मुझे महाराज श्री के दर्शन हुए, उनकी पीताम्बरी धोती फटी थी घुटने दिखाई दे रहे थे, कुर्ता भी फटा था, आँखे खुलीं तो कुछ नहीं पाया। किन्तु कानों में ऐसी आवाज थी कि तुम्हारे साथ में गुरु महाराज भी घिसट रहे थे, मेरी पत्नी भी वहीं लड़रही थी।

उसने दूसरे दिन ग्वालियर शहर से बड़ी श्रद्धा से महाराज श्री के वस्त्र तुरन्त खरीदे। कुर्ता धोती महाराज श्री की पोशाक है। गुरुपूर्णिमा के पर्व पर हम दोनों लोग आये और महाराज श्री तथा उमा बहन जी से सारी व्यथा-कथा कही। महाराज श्री ने फटे कुर्ते का भेद तो नहीं बताया किन्तु उमा बहिन जी ने इतना अवश्य बताया कि तीन दिन फटे कुर्ते को पहिने रहे इसलिए उमा बहिन ने भी नये वस्त्र नहीं पहने। यह जानकर मेरी आँखें डबडबा रही थीं।

धन्य है प्रभो आपकी कृपा को। सारा कष्ट अपने ऊपर लेकर मेरी व मेरे बच्चे की जान बचाई। जब मैंने आग्रह किया और पूछा तो महाराज श्री ने कहा कोई बात नहीं। थोड़ी धूलि की चोट पड़ी है।

अब अपनी बीती कहता हूँ। मेरी दोनों ओर की पसलियों में फैक्चर के साथ सिर के पिछले भाग में बड़ी चोट आई थी यहाँ तक कि याददाश्त जाते-जाते बची। घुटने व कुहनी भी भयंकर चोटों से ग्रस्त रहे।

इतने सब कुछ होने पर भी आज मेरी स्थिति में बहुत ठीक है, एक तरफ की पसलियों में कुछ आराम है तथा शेष चोटें भी अच्छी हो रही हैं, क्योंकि ट्रेन एक्सीडेन्ट से बचना असम्भव सा ही था। एकमात्र गुरुकृपा के अवलम्बन से ही मेरी प्राणरक्षा हो सकी है। इसे मैं कभी भूल न सकूँगा। —x—

❀ संसार के समूचे पुण्य और पाप में हम सब भागीदार हैं। पतन भी एक पत्थर है, यदि व्यक्ति की आस्था मंजिल पर टिकी हो— —खलील जिब्रान

❀ जीवित मनुष्य अतिरिक्त पुस्तक से बढ़कर अद्भुत वस्तु और कुछ नहीं है। पुस्तकें ऐसी मानव आत्माओं के संदेश हम तक पहुँचाती हैं, जिन्हें हम जानते तक नहीं। और फिर भी यह सन्देश हमें जगाते हैं, हमें भयभीत करते हैं, शिक्षा देते हैं और धरोहर की तरह अपना हृदय हमारे सामने रख देते हैं— —किंग्सले

❀ प्राचीन युगों के महापुरुषों के जीवनसे अपरिचित रहनेका अर्थ है सारी उम्र शैशवावस्था में ही बिता देना— —सिसरो

शिवलीन अवधूत योगी—

श्री कृपालानन्द जी

ऋषिकेश से लगभग नौ मील ऊपर पुण्य-तोया भागीरथी के पावन किनारे-किनारे ब्रह्मपुरी नाम का पवित्र वन है। अपनी उत्तराखण्ड की यात्रा प्रारम्भ करने से पूर्व हमारे श्रद्धास्पद योगयोगेश्वर महाप्रभु श्रीराम-लाल जी महाराज ने कुछ समय इस पवित्र वन में निवास किया था। उन्हीं दिनों अवधूत योगी श्री कृपालानन्द जी भी इस वन में रहा करते थे। अखण्ड ब्रह्माकार तेजपुञ्ज परम सिद्ध श्री प्रभुजी की वास्तविकता को वह पहचानते थे, अतः उनके प्रति कृपालानन्द जी के हृदय में स्वाभाविक ही अत्यन्त सम्मान एवं प्रेम का भाव उदय हो गया था। प्रायः वह श्री प्रभु जी के पास आकर ज्ञान-चर्चा किया करते थे।

आनन्दकन्द योगात्मा भगवान श्रीकृष्ण जी ने भगवद्गीता में युक्त योगी का लक्षण इस प्रकार कहा है:-

ज्ञान विज्ञान तृप्तात्मा
कूटस्थो विजितेन्द्रियः।
युक्त इत्युच्यते योगी
समलोष्टाश्म काञ्चनः।
श्री० भ० गी० अ० ६/८

अर्थात् जिसकी आत्मा ज्ञान-विज्ञान से परिपूर्ण है और जो बिल्कुल विकार रहित स्थिति में पहुँच गया है और जो सब प्रकार से इन्द्रियजयी है—ऐसा योगी युक्त योगी कहलाता है। 'ज्ञानविज्ञान तृप्तात्मा' पद का तात्पर्य है कि प्रकृति के सारे विश्लेषणों को समझ कर उन पर नियंत्रण प्राप्त करना। अर्थात् संयम के बल से सकल सिद्धियों को प्राप्त करना और पूर्ण आत्मसाक्षात्कार करना। हमारे पूर्व आचार्यों ने योग-विद्या की महत्ता का प्रतिपादन करते हुए यह शब्द कहे हैं—

यस्मिन् ज्ञाते सर्वमिदं ज्ञातं भवति।

अर्थात् जिसके जान लेने पर सब कुछ जाना जाता है। इस महती विद्या के सकल ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए योगाचार्यों ने दो मार्गों का वर्णन किया है। उनमें से एक मार्ग औपनिषदिक सिद्धान्त का है जिसका वर्णन भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में इस प्रकार किया है:—

इन्द्रियाणि पराण्याहु
इन्द्रियेभ्यो परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिः
योबुद्धेः परतस्तु सः॥
श्री० भ० गी० अ० ३/४२

अर्थात् योगी पहले अपनी इन्द्रियों का साक्षात्कार करे, फिर मन का करे, उसके बाद बुद्धि का साक्षात्कार और तदनन्तर आत्म-साक्षात्कार करे। किन्तु इस मार्ग में थोड़ी सी कठिनता है क्योंकि इन्द्रियों के सूक्ष्म धर्मों को समझना कठिन है। उससे भी बढ़कर मन और बुद्धि को समझना तो और भी कठिन है। और आत्म-साक्षात्कार तो उससे भी बहुत आगे की वस्तु है। दूसरा मार्ग सर्वसाधारण के कल्याणार्थ हमारे आचार्यों ने यह बताया जिस पर चलने से हर व्यक्ति अपना कल्याण कर ही सकता है। इस मार्ग का संकेत योगाचार्य भगवान पतंजलि महाराज ने 'वीतराग विषयं वा चित्तम्' सूत्र कर किया है। अर्थात् वीतराग पुरुषों को हम अपना ध्येय बनाकर उनके मन में अपना मन, उनके चित्त में अपना चित्त, उनकी बुद्धि में अपनी बुद्धि और उनके अहंकार में अपना अहंकार विलीन कर दें तो थोड़े समय में ही समाधि-लाभ कर सकते हैं। उस स्थिति में उनकी उपार्जित सिद्धियाँ हमारी अपनी होंगी और कालान्तर में उनके स्वरूप में लय होकर हम कैवल्य-भाव को भी अवश्य प्राप्त हो जायेंगे।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी इस दूसरे मार्ग के ही अनुगामी थे। उनके ध्येय थे भगवान सदाशिव, अतः वह शिवलीन रहा करते थे। उपर्युक्त सिद्धान्त के अनुसार अवधूत श्री कृपालानन्द जी अपने मन, चित्त, बुद्धि और अहंकार को भगवान सदाशिव के मन, चित्त बुद्धि और अहंकार में विलीन किये रहा करते थे। भगवान शिव में लीनता के कारण अवधूत कृपालानन्द जी को भगवान सदाशिव की शक्तियाँ हर समय प्राप्त थीं। युक्त योगी होने के कारण उस वन में रहने वाले अन्य सभी महात्मा उनका अत्यन्त सम्मान करते थे। वह सरल विरक्त-भाव से अवधूत वृत्ति में विचरा करते थे।

उन्हीं दिनों मंसूरी के वनों में घूमते हुए एक अंग्रेज दम्पति आए। वहाँ एक साधना-लीन महात्मा के दर्शन होने से उस अंग्रेज स्त्री के हृदय में वैसी भावना कर ईश्वर-प्राप्ति की कामना जागृत हो गयी, उस स्त्री ने महात्माजी के चरण पकड़ कर इस मार्ग का उपदेश करने की प्रार्थना की। महात्मा जी योगबल से समझ गये कि इसका संस्कार महात्मा कृपालानन्दजी से है। अतः उन्होंने उस अंग्रेज महिला को भद्रपुरी के वन में जाने की आज्ञा देते हुए कहा—योगिराज कृपालानन्द जी के द्वारा ही तुम्हें यह ज्ञाननिधि प्राप्त होगी। उनके द्वारा ही ज्ञान का प्रकाश तुम्हें प्राप्त होगा। वह अंग्रेज स्त्री बड़ी दृढ़ लगन वाली थी। अतः पति को वापिस करके खोजते खोजते भद्रपुरी के वन में जा पहुँची और तत्पश्चात कृपालानन्द जी का अन्वेषण करने लगी इसी प्रकार प्रति

हो गई, तब भयभीत होकर उसने भगवान से कातर-स्वर में प्रार्थना की। अकस्मात् कृपालानन्द जी नग्न रूप में विचरण करते उधर ही आ निकले। देखते ही उस देवी ने अवधूत जी के चरण कमल को पकड़ लिया। पहिले तो उसे हतोत्साहित करने का प्रयास किया। अन्त में उसकी दृढ़ लगन देखकर उसे योगाभ्यास की विधि बताई और वहीं पर कुटी बना कर रहने की आज्ञा देदी। वह देवी अपने गुरुदेव की आज्ञा का अक्षरशः पालन करती और कन्दमूल खाकर अपनी साधना में तत्पर रहती। परिणामतः उसमें कई चमत्कारिक शक्तियों का प्रादुर्भाव हुआ।

जिन दिनों आनन्दकन्द प्रभु श्री रामलाल जी महाराज वहां पहुँचे थे, तब वह देवी भी वहीं निवास किया करती थी। इसके अतिरिक्त हीरागिरि नाम के एक अन्य महात्मा से भी परिचय हुआ। परिचय बढ़ने पर श्री प्रभुजी और वह महात्मा साथ साथ गंगा-स्नान करके कन्दमूल खोद लाते और साथ ही खा लिया करते थे। कभी-कभी कृपालानन्द जी भी उस ओर आ जाते थे। महात्मा हीरागिरि अवधूत कृपालानन्द जी के प्रति कुछ उपेक्षा का भाव रखा करता था। अवधूत उसके मनोभाव समझ गये और उन्होंने उसे शिक्षा देने का विचार किया।

अवधूत श्री कृपालानन्द जी प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त में ही पवित्र गंगा की धारा में स्नान करके गंगा-तट पर ही समाधिस्थ होकर बैठ जाया करते थे। दोपहर बाद लगभग दो बजे के उपरान्त वह समाधि से उठते थे। उठने के पश्चात् उस वन में जो कोई भी साधु कन्दमूल पकाकर तैयार किया हुआ दिव्य-दृष्टि से दिखाई देता उसके पास मनोगति से तत्काल आ पहुँचते और उससे आग्रह भोजन लेकर खा लिया करते थे। वह स्वयं कन्दमूल न बनाकर नित्य इसी प्रकार किया करते थे। ब्रह्मपुरी के वन में रहने वाला कोई भी महात्मा उनके इस नैत्यिक कार्यक्रम के कारण कृपालानन्द जी से रुष्ट नहीं होता था क्योंकि सभी को उनकी दिव्य-स्थिति का ज्ञान था। सब जानते थे कि यह सब प्रकार से परिपूर्ण भगवान सदाशिव के रूप ही हैं। अतः जिसके यहाँ जाकर भी वह भोजन करते वही अपना अहो-भाग्य समझता और उनके पुनरागमन की प्रतीक्षा किया करता। परन्तु महात्मा हीरागिरि उनके इस व्यवहार से बहुत ही चिढ़ता था। इसी कारण उसके प्रति उपेक्षा भाव रखते हुए कहता ठीक है, कृपालानन्दजी मुक्त योगी हैं और हम सब युंजन योगी हैं। लेकिन कालान्तर में हम भी मुक्तता को प्राप्त होंगे ही। कृपालानन्द भी हमारे बराबर का भाई ही तो है।

योगिराज कृपालानन्द जी ने उसके मनो-

भागों को बांट लिया था। अतः अब भोजन के लिए अन्य किसी मनुष्य के यहाँ न जा कर वह शिष्य ही महात्मा हीरागिरि के स्थान पर पहुँचने लगे। दो तीन दिन तो वह चुप रहा और मन मार कर कृपालानन्द जी को भोजन के लिए कन्दमूल देता रहा। परन्तु चौथे दिन जब कृपालानन्द जी को भोजन के ठीक तैयार हो जाने पर आया हुआ देखकर बड़ी खीझ हुई। जैसे ही कृपालानन्द जी ने अपना भाग मांगा, वैसे ही वह क्रोध में भर कर बोला—क्यों दें तुझे कन्दमूल ? क्या तू खोद कर रख गया था ? जंगल में पड़ा है वहीं से तो खोद ले और बना कर खा ले। किन्तु अवधूत कृपालानन्द जी ने उसकी इन क्रोधयुक्त वचनों को कोई महत्व नहीं दिया और चुपचाप उसके बनाये हुए कन्दमूलों में से अपना भाग स्वयं ही लेकर खा गये और हँसते हुए चल दिए। हीरागिरि बहुत चिढ़ता रहा और कहता रहा—देखो, महात्मा होकर भी क्या आदत डाली है ? आया और खा गया, जैसे इसके मां बाप खोदकर और बना कर इसके लिए ही रख जाते हों। हीरागिरि ने अगले दिन इस मुसीबत से बचने के लिए भोजन के समय बहुत ही पहले कन्दमूल बना डाले और जी प्रभुजी से बोला—देख दुष्ट कृपालानन्द के आने से पूर्व ही खा लेता हूँ। फिर अवधूत आकर खाली पात्र देखकर स्वयं ही लौट जायगा। अभी उसने भोजन परोसा ही था कि सामने से मुस्कराते हुए कृपालानन्द जी आते दिखाई पड़े। आते ही बोले—भाई हीरागिरि बड़ा अच्छा किया जो तुमने जल्दी ही कन्दमूल तैयार कर लिये। आज तो जल्दी ही भूख लग आई है। बेचारे महात्मा हीरागिरि को मिला भी था न सोच पाये पड़े, और कृपालानन्द जी तृप्त होकर चल दिये।

महात्मा हीरागिरि बड़ी उलझन में था, कैसे इस अवधूत से पिंड छूटे ? तभी एक उपाय सूझा और अगले दिन उसने भोजन के समय तक कन्दमूल खोदे ही नहीं। उसका विचार था भोजन के समय अवधूत आयेगा तो कह दूंगा—भाई, यदि तुझे कन्दमूल खाने हों, तो खोद ला और बनाकर खा ले। मुझे तो खाना नहीं था, इसलिए बनाया भी नहीं है। परन्तु आश्चर्य की बात कि उस दिन भोजन के समय योगी कृपालानन्द आए ही नहीं। जब भोजन का समय निकले दो घंटे हो चुके, तब हीरागिरि वन में जाकर कन्दमूल खोद लाया और और बनाने लगा।

मन बड़ा प्रसन्न था और निश्चय ही इसी उपाय से कृपालानन्द जी से बचने की बात सोच चुका था। कंदमूल पककर तैयार ही हुआ था कि कृपालानन्द जी आ पहुँचे और हँसकर बोले—भाई हीरागिरि तू हमारा बड़ा

ख्याल रखता है। मुझे कम पता लग गया कि आज हम भूल नहीं सकते हैं। इसलिए हम देर से खायेंगे। वैसे तो आज बिना खाये ही रहना चाहता, लेकिन जब तूने इस समय बना ही रखा है तो ला—थोड़ा सा खा लेते हैं। मन ही मन हीरागिरि को बेहद क्रोध आया और बोला—तुम कुछ समाधि-असमाधि नहीं लगाते। केवल भोजन की समाधि लगाते हो। इस समय कहाँ कन्दमूल मिलेगा। मना नहीं देखा करते हो। इसके बाद हीरागिरि नित्य स्थान परिवर्तन कर करके कन्दमूल तैयार करने लगा। किन्तु श्री कृपालानन्द जी की दिव्य-दृष्टि से कोई भी स्थान बच न सका। और वह अपनी मनोकामना से प्रत्येक स्थान पर पहुँचकर हीरागिरि के यहाँ ही नित्य भोजन करते थे।

महात्मा हीरागिरि के हृदय में प्रतिशोध की भावना जाग्रत हो गई और उसने एकदिन चुपचाप धतूरे के ढेर भर पत्तों का साग बना डाला और मन में कहने लगा—आज महात्मा को इस प्रकार खाने का मजा मिल जायेगा। उधर श्री प्रभुजी ने भी अपने कन्दमूल भूनकर तैयार किये हुए थे। ठीक समय पर कृपाला-नन्द जी आये। श्री प्रभु जी ने अपने कन्दमूलों के तीन भाग करके एक भाग कृपालानन्द जी के सम्मुख रखा। हीरागिरि ने धतूरे का साग भाग कृपालानन्द के सम्मुख रख दिया। तब अवधूत बोले—क्यों रे हीरागिरि मरने को हम ही रह गये थे क्या? हम तुम दोनों ही क्यों न मरें? इस साग को तू भी खा और हम भी खाते हैं। श्री प्रभुजी इस रहस्य से अनभिज्ञ थे, अतः आश्चर्य में पड़कर कहने लगे—महाराज क्या हुआ? ऐसे वचन क्यों बोल रहे हैं? तब कृपालानन्द जी बोले—आज यह हमें मारने के लिए धतूरे के पत्तों का साग बनाकर लाया है। श्री प्रभुजी ने कहा—आप इसे मत खाइए बस केवल मेरे वाले कन्दमूल ग्रहण कीजिए। परन्तु अवधूत कहने लगे—बेचारे ने बड़े प्रेम से बनाया है। हम इसे अवश्य खायेंगे। ऐसा कहकर उस साग के तीन भाग करके एक प्रभु जी के सामने भी रख दिया और कहा—तुम इसे निःशंक खाओ, हम भी खाते हैं। परन्तु फल यह दुष्ट हीरागिरि ही भोगेगा। तीनों ने वह साग खाया किन्तु प्रभुजी और कृपालानन्द पर धतूरे के विष का कोई प्रभाव नहीं हुआ। परन्तु थोड़ा साग खाते ही हीरा-गिरि को नशा चढ़ने लगा और थोड़ी देर में विष के प्रभाव से वह मूर्छित हो गया। श्री प्रभुजी से कृपालानन्द जी ने कहा—तीन दिन तक यह अपने किए का आनन्द भोगेगा। तीन दिन बाद होश में आते ही हीरागिरि बोला—हम अब इस दुष्ट कृपालानन्द को अपने आश्रम से बाहर करेंगे और चुपचाप नित्य की भाँति कन्दमूल बनाकर तैयार किये। मध्याह्न

होने पर अवधूत श्री कृपालानन्द जी आगे और हँसकर बोले—कहो हीरागिरि अभी कुछ और मन में है। यों प्रभुजी हँस पड़े। तो अब कुछ कहने लगे—अब यह योगबल से बदला लेगा। हम उस समय भी इसकी खबर लेंगे। तत्पश्चात् पञ्चपुष्प का भोजन करके दोनों महाराज बैठकर चर्चा करने लगे।

उस समय हीरागिरि अपना अपमान समझकर बहुत ही क्रोध में था। उसने दशा में निश्चय किया—आज जब यह अवधूत ध्यानमग्न होगा, उसी समय जाकर इसका मुख कालिख से काला कर दूँगा। कृपालानन्द जी पूर्ण योगी थे, तत्काल उसके मन का विचार जान गये और वहीं समाधि लगाकर बैठ गये। दोनों मुट्ठी में कालिख ले आया करके जैसे ही बढ़ा—उनके आसन के नीचे से पानी निकलकर हीरागिरि के मुख को लिपट गई। उससे बचने के लिए अनजाने ही उसने अपने काले हाथों को अपने मुख पर ही लगा लिया फलतः कृपालानन्द जी के बजाय उसका स्वयं का ही मुख काला हो गया। श्री कृपालानन्द जी की इन चमत्कारिक शक्तियों को देखकर हीरागिरि कुछ भयभीत सा ही गया। परन्तु प्रतिशोध की भावना उसके मन से न निकल सकी।

एक दिन श्री प्रभुजी के निवास स्थान पर हीरागिरि, कृपालानन्द और कृपालानन्द की अनेक शिष्या एकत्रित थे। हीरागिरि कहने लगा—अवधूत जी, आपका तप तो अत्यन्त ऊँचा है। हमें तो आपसे एक कार्य कराना था। कृपालानन्द जी बोले—निस्संकोच कहो क्या काम है? हीरागिरि बोला—हम चाहते हैं कि इस ब्रह्मचारी (प्रभुजी) की शिला यहाँ से उठाकर हमारे स्थान पर ले जाकर रख दी जाती—तो बड़ा अच्छा होता। यहाँ से हीरागिरि जी का स्थान दो मील दूर था। और शिला का वजन सैकड़ों मन था। तत्काल कृपालानन्द जी ने अपनी शिष्या को आज्ञा दी—जाओ, यह शिला उठाकर वहाँ रख आओ। आज्ञा पाकर वह देवी कृपालानन्द जी की परिक्रमा करके एवं चरणकमलों में प्रणाम करके उस शिला पर सिद्धासन से बैठ गई। थोड़ी देर में ही वह शिष्या शिला सहित आकाश मार्ग से जाकर, यथास्थान रखकर आकाश मार्ग से ही वापस आ गई। आकर अपने गुरुदेव को प्रणाम करके बैठ गई। इस चमत्कार को देखकर हीरागिरि बहुत लज्जित होकर कृपालानन्द जी का मान करने लगा।

अवधूत कृपालानन्द जी पूर्ण योगिराज थे और भगवान सदाशिव में लीन रहने के कारण उन्हीं के सदृश शक्ति सम्पन्न रहते थे। कुलयोगियों की श्रेणी में आदर्श स्थान रखते थे। आनन्दकन्द श्री प्रभुजी से वह पिता का नाता मानते थे।

संत महिमा और रामचरित मानस

श्री रामवृक्ष त्रिपाठी, गोरखपुर

विभीषण लंका में निशाचरों के बीच घिरे दुखित हैं। तथा उन्हें सबसे बड़ी चिन्ता अपनी है। ऐसे में हनुमान जी श्री सीता माता का पता लगाने लंका आते हैं। उनकी विभीषण से मुलाकात होती है। विभीषण के हृदय में विश्वास का नया अंकुर जन्म लेता है—

अब मोहि भा भरोस हनुमन्ता।
बिनु हरि कृपा मिलहिं नहिं सन्ता॥

सन्त का दर्शन ही ईश्वर की महान कृपा से होता है—

संत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही,
चितवहिं राम कृपा करि जेही।

मानस में एक और विचित्र प्रसंग है—

ज्ञानी, भगत, शिरोमणि त्रिभुवनपति कर जान,
ताहि मोह माया नर पामर करहिं गुमान।

ज्ञानी भक्तों के शिरोमणि गरुड़ जी, जो भगवान जी के वाहन भी हैं, वह भगवान राम को नाग पाश बद्ध देखते हैं। बुद्धि चक्कर में पड़ जाती है—

भव बन्धन ते छूटहिं नर जपि जाकर नाम,
खर्ब निसाचर बाँधेहु नागपास सोई राम।

ये कौन से राम हैं जिन्हें तुच्छ राक्षस ने बांध लिया

नाना भाँति मनहि समुझावा
प्रगट न ज्ञान मोह भ्रम छावा।

मोह ने ज्ञान को ढक लिया। वे बेचैन हो कर नारद के पास जाते हैं। नारद उनको भी असमर्थ पाते हैं। वे सलाह देते हैं ब्रह्मा के यहाँ जायें। ब्रह्मा उन्हें शंकर के पास भेजते हैं। रास्ते में ही भगवान शंकर से मुलाकात हो जाती है—

मिलेउ गरुड़ मारग महँ मोही,
कवन भाँति समझावौं तोही।
तबहिं होइ सब संसय भंगा,
जब बहु काल करिअ सतसंगा।

यह अज्ञान तभी दूर होगा जब बहुत दिनों तक सत्संग कीजियेगा। शंकर जी बताते हैं—

उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला,
तहँ रह काक भुसुण्डि सुसीला।
जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी,
होइहि मोह जनित दुख दूरी।

भगवान शंकर जी उन्हें संत शिरोमणि काक भुसुण्डि के पास जाने की राय देते हैं—

गयउ गरुड़ जहँ बसइ भुसुण्डा,
मति अकुण्ठ हरि भगति अखण्डा।

काक भुशुण्ड जी उनका स्वागत करते हैं—

अति आदर खगपति कर कीन्हा,
स्वागत पूछि सुआसन दीन्हा।
करि पूजा समेत अनुरागा,
मधुर बचन तब बोलेउ कागा॥

काक भुशुण्डि जी गरुड़ की अभ्यर्थना करके पूछते हैं—

नाथ कृतारथ भयउ मैं तव दरसन खगराज।
आयसु देहु सो करौं अब प्रभु आयहु केहि काज॥

गरुड़ जी अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं—

सुनहु तात जेहि कारन आयउँ,
सो सब भयउ दरस तव पायउँ।
देखि परम पावन तव आश्रम,
गयउ मोह संसय नाना भ्रम॥

जिस हेतु आया था, वह पूरा हो गया। आपके दर्शनमात्र से। मेरा सारा मोह, अज्ञान, भ्रम नष्ट हो गया। यह है सन्त महिमा। जिस मोह का छेदन करने में नारद, ब्रह्मा तथा शंकर अपने को असमर्थ पाते हैं। भगवान शंकर तो यह भी कह देते हैं—

तबहिं होइ सब संसय भंगा,
जब बहु काल करिअ सतसंगा।

आपका भ्रम तभी दूर होगा जब बहुत दिनों तक सत्संग करोगे और वह संशय सन्त का दर्शन होने से पहले उस आश्रम को देखने मात्र से दूर हो गया—

देखि परम पावन तव आश्रम,
गयउ मोह संसय नाना भ्रम।

इतना ही नहीं मानस के प्रारम्भ में ही सन्त तुलसीदास जी लिखते हैं—

मति कीरति गति भूति भलाई,
जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई।
सो जानब सतसंग प्रभाऊ,
लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

यदि किसी व्यक्ति के पास किसी तरह की उपलब्धि है। बुद्धि, यश, ऐश्वर्य, कल्याण यहाँ तक कि मोक्ष भी उस व्यक्ति की वह उपलब्धि सत संगति का ही प्रभाव है। इस संसार में और कोई दूसरा मार्ग नहीं है।

× × ×

छाँड़ि मन हरि विमुखन को संग।
जिनके संग कुबुधि उपजत है, परत भजन में भंग॥
कहा होत पयपान कराये, विष नहीं तजत भुजंग।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गंग॥
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज को कहा न्हवाये सरिता, बहुरि धरै वहि छंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतो करत निषंग।
सूरदास खल कारी कामरि, चढ़त न दूजो रंग॥ —भक्त सूरदास

एक दिन की बात

● श्री दर्शनानन्द

अब से लगभग दो वर्ष पहले की बात है। गुरु पूर्णिमा का पावन अवसर था। गुरु धाम सचाई आश्रम के विशाल आंगन में पूजन-मंच पर पद्मासन श्री गुरुदेव जी विराजमान थे, प्रभु जी का चित्र अपनी प्रकाश-पूर्ण मुद्रा में, जिसे विशेष ढंग से अवसर के अनुकूल सजाया गया था और श्री गुरुदेव जी के बैठने के स्थान के समीप ही, कुछ ऊपर गुरु की चाहरी धाम में अपने नियत स्थान पर लगाया गया था, विशेष आकर्षण का केन्द्र बना हुआ था। पूजार्थी साधक गुरुभाई-बहनों की भारी भीड़ चार लम्बी-लम्बी पंक्तियों में बैठकर क्रमशः धीरे-धीरे अपनी पूजा के आवश्यक उपकरणों के साथ पूजा मंच की ओर बढ़ रही थी। भीड़ की अधिकता के कारण किसी के लिए भी यह संभव नहीं हो पाया कि पूजार्थियों की पंक्ति को तोड़कर वह अकेला आगे आकर पूजा कर लेने का अवसर मन चाहे ढंग से पा ले। यद्यपि कुछ भाई-बहन पंक्ति मर्यादा का उल्लंघन करके पूजार्थ दायें-बायें पार्श्व-भागों से पूजा मंच तक पहुँच जाने की कोशिश कर पाने में सफल मनोरथ होते हुए भी देखे जाते थे। किन्तु व्यवस्था में संलग्न ब्रह्मचारियों की सजगता के कारण सभी के लिए यह मुमकिन नहीं हो पाता था, शेष को तो मन्थरगति से कदम कदम चलकर ही पूजा-मंच तक पहुँच पाना संभव हो पाया। प्रायः इस पूजा-यात्रा में जो दो सौ गज से अधिक लम्बी नहीं होती—पूजा मंच तक कदम-कदम चलकर पहुँचने में दो घंटे और कभी-कभी तीन घंटे का समय लग जाता है। किन्तु पूजा कर पाने की उत्सुकता का आनन्द तो इस मंथर गति वाली आंगनी यात्रा में ही आता है। धूप-छाँही बादलों का आसमान में छाया रहना अथवा कभी-कभी बौछारी वर्षा की हल्की-भारी बूँदा-बाँदी इस पूजन के पावन अवसर को और भी अधिक पावनतम तथा सुहावना बना रही थी। प्रभुवर रामलाल जी महाराज की जय, गुरुदेव जी भगवान की जय के सामूहिक उद्घोषों में समाया हुआ गुरुपूजा की महत्ता का सन्देश चातुर्दिक गुरुधाम व दसों दिशाओं में बिखेर रहे थे। ऐसे ही वातावरण में प्रभुवर रामलालजी की जय-जयकार का बार-बार लगाया जाने वाला उद्घोष सुनकर पूजार्थी पंक्ति में से एक सज्जन अपने समीपस्थ भाई से कहने लगे—सब महाप्रभु रामलाल जी के जयजयकारें कर रहे हैं किन्तु वे हमें दिखाई कहीं नहीं देते हैं?

इतना कहकर वह भाई चुप हो गये और आलोचक के उत्तर की प्रतीक्षा में औरों का मुँह ताकने लगे। इतने में ही एक भाई ने जिन्होंने अपनी आयु के लगभग ५०-५५ वर्ष पूरे कर लिए थे प्रश्नकर्ता को सम्बोधित करते हुए कहा—महाप्रभुजी तो सामने बैठे हुए हैं,

संदेह वहां उपस्थित है यदि तुम उन्हें नहीं देख पा रहे हो तो दोष तुम्हारा है और तुम्हारी आंखों का है, किसी और का नहीं। प्रश्नकर्ता इस भाई की ओर चौकन्ना होकर देखने लगा। इस भाई ने उसके कन्धे पर हाथ रख कर पूजा-मंच की ओर उंगली उठाते हुए कहा देखो मंच पर जो गुरुदेव आसीन हैं जिनकी पूजा करने पूजा की थाली में अक्षत, चंदन, पुष्प आदि लेकर तुम आगे खिसकते जा रहे हो, वे ही तो महामहिम् श्री रामलाल जी हैं देखो खूब गौर से देखो—जो सद्गुरुदेव मंच की शोभा बढ़ा रहे हैं और जिन्हें हम और तुम योगेश्वर महामहिम् श्री चन्द्रमोहन जी के नाम से जानते और मानते हैं वे निश्चित रूप से गौर से देखो, दिव्य दृष्टि से देखो मंचासीन गुरुदेव महाप्रभु श्री रामलाल जी के अतिरिक्त और कोई नहीं हैं।

आसपास के सभी श्रोताओं ने इस भाई जी का समर्थन किया और कहा ठीक भाई ठीक है अतः मान्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन महाराज समर्पित हैं अपने गुरुदेव महाप्रभु रामलाल जी के लिए और महाप्रभु श्री रामलाल जी अनुप्राणित रहते हैं सदा श्री गुरुदेव जी को इस दिव्य देह में।

एक भाई और कहने लगे-इतना ही नहीं अपितु आश्रम के कण-कण में रमे हुए हैं प्रभुवर रामलाल जी। यहां के मनोहारी उद्यान के वृक्षों और गुल्मलताओं के रेशे-रेशे में अनुप्राणित है उनकी अहैतुकी कृपापूर्ण भावना और उनके पावन चरित्र की वे दिव्य अलौकिक झांकियां–जिनको दिव्य दृष्टिवाले साधक देखकर मन ही मन आनंद विभोर होते रहते हैं।

वार्ता का प्रसंग समाप्त होते होते पुजारियों की चारों पंक्तियां धीरे-धीरे सरक कर पूजा मंच तक आ पहुंची और बारी-बारी से सभी ने गुरुदेवजी का पूजन करके अपने-अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये।

इसी बीच में एक मधुर ध्वनि सभी के श्रवण रन्ध्रों में गूँजने लगी—

सिद्धगुरु की इस धरती को,
सभी करें प्रणाम।
जिनके कण-कण में रमी है,
योगेश्वर प्रभुराम॥

कल क्यों!
आज ही क्यों नहीं!

आज की प्रमुख आवश्यकता—

श्रीकृष्ण के योगी जीवन का अनुकरण

● गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का उद्बोधन

स्थूलगत और वासनामय मनोवृत्ति के ऐसे व्यक्तियों की संख्या कम नहीं है जो योग योगेश्वर जगदात्मा भगवान श्रीकृष्ण के आदर्श और पावन चारु चरित्र की योग परायण जीवन की विविध लीलाओं को गलत और मनमाने ढंग से चित्रित किया करते हैं। उदाहरण के लिए उनकी चीर हरण और व्रजांगनाओं के साथ की गई रास लीलाओं को लीजिए।

चीर-हरण की लीला जिस समय की बताई जाती है श्रीकृष्ण की आयु उस समय मात्र सात वर्ष की थी, सात वर्ष की आयु में किसी भी बालक में काम-वासना का स्फुरण हो सकना संभव नहीं हो सकता। अतः इस घटना को लेकर कृष्ण के चरित्र पर कामुकता और भोग-परायणता का आरोप लगाना और उसका इस रूप में प्रचार किया जाना अधम और घृणित मनोवृत्ति वालों का ही काम हो सकता है।

व्रजांगनाओं के साथ 'रासलीला' में दो-दो गोपियों के बीच में एक-एक कृष्ण की उपस्थिति का जो वर्णन है उसमें योग विद्या के काय-निर्माण का रहस्य समाया हुआ है। श्रीकृष्ण जन्मजात योगी थे। पूतना के विषमिश्रित स्तनपान से लेकर महाभारत के युद्ध तक उनके योग रहस्यों का परिचय हमें यत्र-तत्र सर्वत्र मिलता रहता है। खेद इस बात का है हम उनके आदर्श जीवन का अनुकरण न करके, उनके द्वारा कथित योग सिद्धांतों को न समझकर अनर्गल प्रलाप करने वाले प्रचारकों के चक्कर में पड़कर उन्हें रासविहारियों का कृष्ण मात्र ही मान कर अपने मन की तुष्टि कर लेते हैं। आज जरूरत इस बात की है कि हम योगीराज कृष्ण के जीवन के उद्देश्यों और उनके द्वारा प्रतिपादित योग के तत्त्वों को जानकर उनके अनुसार अपना जीवन पवित्र बनावें।

यह उद्बोधन २६ अगस्त को ताजमहल और जापानी कुष्ठ शोध-संस्थान के समीप आयोजित एक धार्मिक समारोह में सर्वाङ्ग योग आश्रम के सुविख्यात सिद्धयोगी अनन्त श्री चन्द्रमोहन महाराज ने दिया। यह समारोह अपने एक शिष्य के द्वारा स्थापित लघु उद्योग संस्थान के उद्घाटन उपलक्ष में आयोजित किया गया था। उद्घाटन श्री गुरुदेव के कर-कमलों से सम्पन्न हुआ।

श्री महाराज जी के साथ संकीर्तनरत बहन उमा शर्मा एवं अन्य ब्रह्मचारी भी पधारे थे। समारोह के आयोजकों की ओर से महाराज श्री का तथा साथ आये सभी आगन्तुक अतिथियों को पुष्पमालाओं से प्रभुवर श्री रामनामजी के जय-जयकारों के बीच उत्साह पूर्वक स्वागत किया गया। संचालन किया नगर के जाने-माने साहित्यकार पत्रकार तथा सिद्धयोग के सह सम्पादक श्री शिव जी ने।

SIDDHAYOG —Regd. No. L. AG. 038 Sept. 1984

प्रेषक कार्यालय :—

सिद्ध योग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक पत्र

श्री सिद्धगुरु योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा।

PRINTED MATTER
Book-Post

को...

विश्वास करो प्रभु पर

असत् के त्याग में कई प्रश्न उठते हैं। यदि असत् (पदार्थों) का त्याग कर दें तो हमारा व्यवहार कैसे होगा, काम कैसे चलेगा, निर्वाह कैसे होगा ? यह मुख्य प्रश्न है। पर सज्जनो ! निर्वाह आपके उद्योग पर, आपके विचार पर अवलम्बित नहीं है। पातञ्जलयोग-दर्शन में कहा गया है—'तद्विपाको जात्यायुर्भोगः।' (२/१३) तीन बातें मनुष्य के जन्म के साथ ही उत्पन्न होती हैं—जन्म, आयु, भोग। जिन कर्मों के फलस्वरूप शरीर मिला है, उन्हीं से आपका सम्बन्ध है। उन्हीं कर्मों से आयु, सुख-दुःख, संयोग-वियोग आदि होते हैं। यह सर्वथा पक्की, सच्ची, एवं निश्चित बात है। प्रारब्ध पर ऐसा विश्वास न हो तो उन प्रभु पर विश्वास करो, जिसने जन्म दिया है, आपके निर्वाह का प्रबन्ध किया है। पैदा तो कर दे और प्रबन्ध न करे, ऐसी भूल सर्वसमर्थ भगवान की ओर से नहीं हो सकती। जो अपने कर्तव्य से कभी च्युत नहीं होते, वे भगवान हैं वे ही अच्युत हैं। और यदि कर्तव्य से च्युत होते हैं तो उन्हें भगवान कहेगा ही कौन ? इसलिए योगक्षेम का भार प्रभु पर छोड़कर कर्तव्य पालन में लगे रहो।